इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

अंतर–विषयक एवं परा–विषयक अध्ययन विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

बीपीवाईसी–131
भारतीय दर्शन

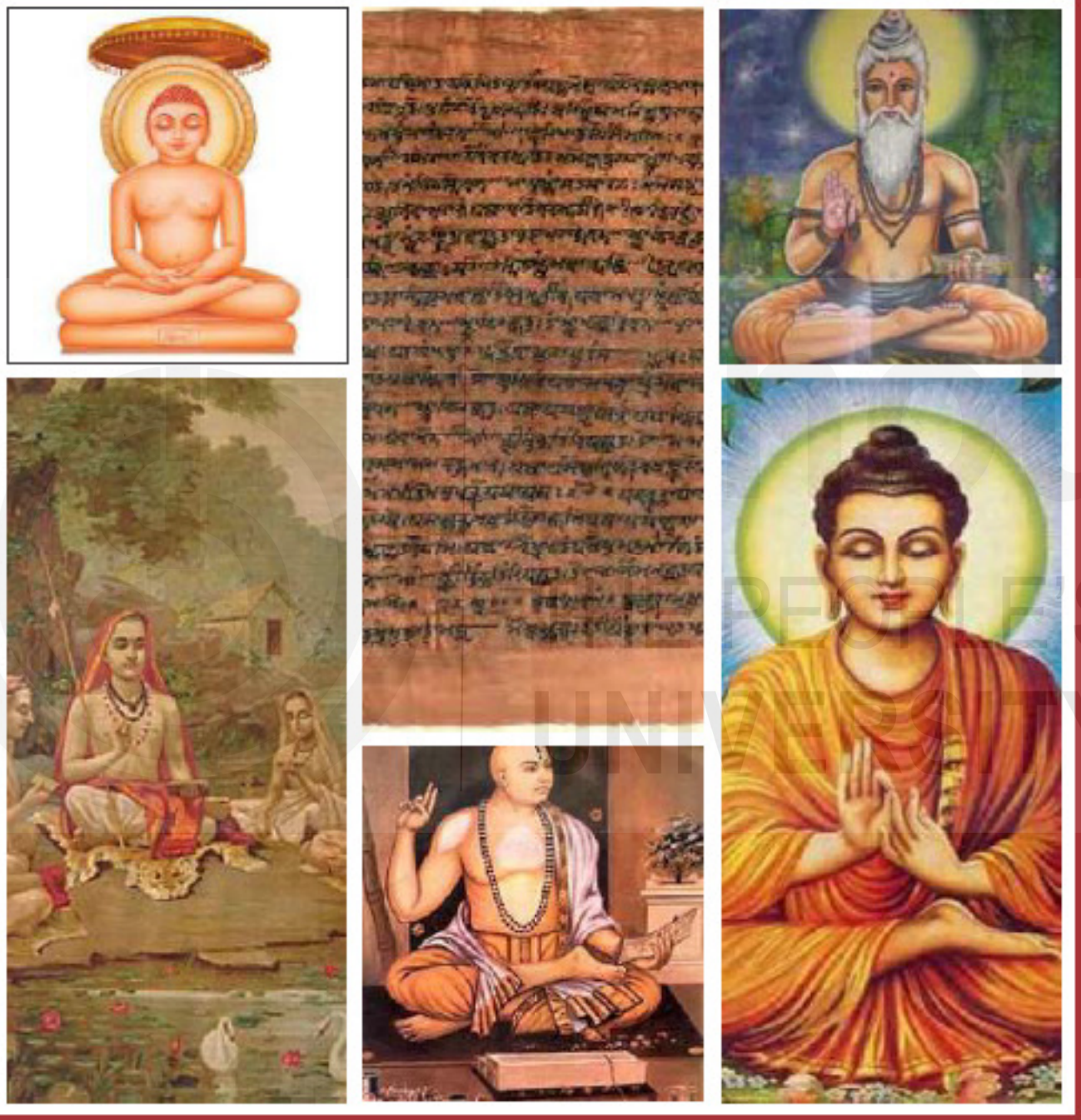

भारतीय दर्शन

"शिक्षा मानव को बन्धनों से मुक्त करती है और आज के युग में तो यह लोकतंत्र की भावना का आधार भी है। जन्म तथा अन्य कारणों से उत्पन्न जाति एवं वर्गगत विषमताओं को दूर करते हुए मनुष्य को इन सबसे ऊपर उठाती है।"

– इन्दिरा गांधी

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

"Education is a liberating force, and in our age it is also a democratising force, cutting across the barriers of caste and class, smoothing out inequalities imposed by birth and other circumstances."

– Indira Gandhi

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

अंतर–विषयक एवं
परा–विषयक अध्ययन विद्यापीठ
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

बीपीवाईसी–131

भारतीय दर्शन

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

अंतर–विषयक एवं परा–विषयक अध्ययन विद्यापीठ
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. पी. टी. सेबस्टियन
विजिटिंग प्रोफेसर, जेएनयू
एवं आचार्य (दर्शनशास्त्र),
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

डॉ. गीता नाथ
दर्शन विभाग
रामजस महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. सुमेश एम. के.
दर्शनशास्त्र विभाग
कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. रूपलेखा खुल्लर
दर्शनशास्त्र विभाग
जानकी देवी स्मृति महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. अमित कुमार प्रधान
दर्शनशास्त्र विभाग,
रामजस महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. बिन्स सेबस्टियन
दर्शनशास्त्र विभाग,
सेन्ट स्टीफेन्स महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. सुदन्या कुलकर्णी
दर्शनशास्त्र विभाग
जानकी देवी स्मृति महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. गरिमा मणि त्रिपाठी
दर्शनशास्त्र विभाग
माता सुन्दरी महिला महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

सुश्री प्रियम माथुर
परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र)
एसओआईटीएस, इग्नू

एसओआईटीएस अकादमिक सदस्य
प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर
प्रो. बी रुपिणि
डॉ. शुभांगी वैद्य
डॉ. सदानन्द साहू

पाठ्यक्रम निर्माण दल

खण्ड	इकाई लेखक	इकाई अनुवादक
खण्ड 1 भारतीय दर्शन का परिचय		
इकाई 1 भारतीय दर्शन की रूपरेखा	प्रो. एम. आर. नन्दन	श्री प्रवेश कुमार
इकाई 2 भारतीय ग्रंथ	प्रो. एम. आर. नन्दन	श्री प्रवेश कुमार
इकाई 3 महाकाव्यों का दर्शन	श्री अजय जायसवाल	डॉ. विजय कुमार
इकाई 4 नास्तिक एवं आस्तिक दर्शन	श्री अजय जायसवाल	श्री आशुतोष व्यास
खण्ड 2 औपनिषदिक दर्शनः मूल विषय– I		
इकाई 5 उपनिषदों के दर्शन का परिचय	श्री दीपक कुमार सेठी	डॉ. अफजल अहमद
इकाई 6 मोक्ष के विभिन्न उपागम	श्री अजय जायसवाल	डॉ. अफजल अहमद
इकाई 7 प्रश्न उपनिषद्	श्री दीपक कुमार सेठी	डॉ. अफजल अहमद
इकाई 8 मुण्डक उपनिषद्	डॉ. जॉन पीटर	डॉ. आर. एस. दूबा
इकाई 9 माण्डूक्य उपनिषद्	डॉ. जॉन पीटर	डॉ. आर. एस. दूबा
खण्ड 3 औपनिषदिक दर्शनः मूल विषय– II		
इकाई 10 ईश उपनिषद्	श्री अजय जायसवाल	डॉ. अफजल अहमद
इकाई 11 कठोपनिषद्	डॉ. जॉन पीटर	श्री आशुतोष व्यास
इकाई 12 छान्दोग्य उपनिषद्	प्रो. एम आर नन्दन	श्री प्रवेश कुमार
इकाई 13 बृहदारण्यक उपनिषद्	डॉ. परिमल जी. के.	श्री प्रवेश कुमार

खण्ड 4 नास्तिक दर्शन		
इकाई 14 चार्वाक	प्रो. सुधा गोपीनाथ	प्रो. ए. के. राई
इकाई 15 जैन दर्शन	प्रो. सुधा गोपीनाथ	प्रो. ए. के. राई
इकाई 16 बौद्ध दर्शन– 1	प्रो. सुधा गोपीनाथ	प्रो. ए. के. राई
इकाई 17 बौद्ध दर्शन– 2	प्रो. सुधा गोपीनाथ	प्रो. ए. के. राई

खण्ड 5 आस्तिक दर्शन		
इकाई 18 न्याय–वैशेषिक	डॉ. सत्य सुन्दर सेठी	श्री दिलीप जायसवाल
इकाई 19 सांख्य–योग	डॉ. सत्य सुन्दर सेठी	श्री दिलीप जायसवाल
इकाई 20 मीमांसा	डॉ. सत्य सुन्दर सेठी	श्री दिलीप जायसवाल
इकाई 21 वेदान्तः शंकर, मध्व, रामानुज	डॉ. एस. भुवनश्वरी	डॉ. आनन्द पाण्डे
इकाई 22 शैव दर्शन और वैष्णव दर्शन	डॉ. जॉन पीटर	डॉ. आनन्द पाण्डे

विषय–वस्तु सम्पादक

डॉ. रूपलेखा खुल्लर, जानकी देवी स्मृति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. गरिमा मणि त्रिपाठी, माता सुन्दरी महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. विजय कुमार

विषय–वस्तु सम्पादन (हिन्दी)

डॉ. अमित कुमार प्रधान, रामजस महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. विजय कुमार

श्री आशुतोष व्यास, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

प्रारूप सम्पादक

प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर, एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

श्री आशुतोष व्यास, परामर्शदाता, एसओआईटीएस, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम समन्वयक

प्रो. नन्दिनी सिन्हा कपूर, एस. ओ. आई. टी. एस, इग्नू नई दिल्ली

अकादमिक परामर्श (दर्शनशास्त्र) श्री आशुतोष व्यास

कवर डिजाइन सुश्री प्रियम माथुर

सामग्री निर्माण

श्री वाई. एन. शर्मा
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

श्री सुधीर कुमार
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी., इग्नू, नई दिल्ली

जनवरी, 2021

© इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2021

ISBN : 978-93-90773-69-5

सर्वाधिकारी सुरक्षित। इस कृति का कोई भी अंश या किसी भी अन्य रूप में, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा पुनरूत्पादित नहीं किया जा सकता है।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से संबंधित सूचना प्राप्त करने के लिए इसके मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068 स्थित कार्यालय से संपर्क किया जा सकता है।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुल सचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरण प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

टाइपसैटिंग एवं मुद्रण : मैसर्स हाईटेक ग्राफिक्स, डी–4/3, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस–2, नई दिल्ली – 110020

पाठ्यक्रम परिचय

प्रस्तुत पाठ्यक्रम प्राचीन भारतीय दर्शन की मूलभूत मान्यताओं/सिद्धान्तों को रेखांकित करता है। यह पाठ्यक्रम नौ भारतीय दार्शनिक प्रणालियों/सम्प्रदायों की मूल अवधारणाओं के साथ–साथ अनेक उपनिषदों का उनकी विस्तृत दार्शनिक व्याख्याओं के साथ चर्चा करता है। इस पाठ्यक्रम की अपरिहार्यता का कारण यह है कि यह, आगामी दार्शनिक अध्ययनों की पृष्ठभूमि तैयार करता है एवं तत्त्वमीमांसा और ज्ञानमीमांसा के परिचयात्मक दृष्टिपात के लक्ष्य की प्रतिपूर्ति करता है। इस मूल पाठ्यक्रम का उद्देश्य भारतीय दर्शन के विभिन्न विषयात्मक प्रसंगों के माध्यम से परिचय कराना और दर्शन में मूलभूत अवधारणाओं की निर्मिति एवं उनका विश्लेषण है।

दर्शन अथवा भारतीय दर्शन पद विस्तारित रूप से भारतीय उपमहाद्वीप में उद्भूत अनेक दार्शनिक विचारों की परम्पराओं में से प्रत्येक को संदर्भित करता है; दृष्टान्ततः, हिन्दु दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, और जनजातिय एवं दलित दर्शन। समान अथवा गुंथा हुआ उद्गीय वाले, ये सभी दर्शन विश्व–दृष्टि का एक सामान्य बुनियादी विषय धारण करते हैं, और सादृश्यतः प्राथमिक रूप से सत्य और मोक्ष प्राप्ति के बारे में अपनी धारणाओं के माध्यम से, तत्त्वमीमांसा की व्याख्या का प्रयास करते हैं। इन दर्शनों की एक विशेषता यह है कि ये समान "प्रणाली" से सम्बन्धित होने के बावजूद एक–दूसरे से असहमत हो सकते हैं, जैसे द्वैत और अद्वैत समान परम्परा से उद्भूत होते हुये भी अपने दृष्टिकोण में भिन्न हैं या फिर जैसे अवैदिक जैन और वैदिक सांख्य, बहुलवाद के बारे में समान विचार रखते हैं, जबकि दोनों पूर्णतः स्वतन्त्र दर्शन प्रणालियां हैं।

स्नातक सामान्य दर्शन पाठ्यक्रम दर्शन की मूलभूत मान्यताओं/सिद्धान्तों के समग्र बोध के लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए संरचित किया गया है। प्रथम पाठ्यक्रम बीपीयाईसी–131 रू भारतीय दर्शन है जो प्राचीन भारतीय दर्शन, जोकि वेदों के दर्शन से लेकर नास्तिक दर्शन सम्प्रदायों जैसे चार्वाक और बौद्ध दर्शन तक विस्तृत है, की मूलभूत मान्यताओं को समाहित करने का प्रयास करता है। इसमें पांच खण्डों में विभाजित 22 इकाईयां हैं। प्रथम खण्ड "भारतीय दर्शन का परिचय" भारतीय दर्शन का प्रवेश–बिन्दु है क्योंकि यह प्रथमतः आधारभूत अवधारणाओं का परिचय देता और तत्पश्चात् इस बात की विशद जानकारी देता है कि कैसे प्राचीन भारतीय ग्रंथ दर्शन की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।

प्रथम खण्ड चार इकाईयों में विभाजित है। यह खण्ड पाश्चात्य एवं भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के मध्य भेदों को तथा पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों के द्वारा दर्शन के लक्ष्य को भिन्न तरह से देखने के विचार को जानने में सहायता करता है। यह खण्ड भारतीय तत्त्वमीमांसा के मूल प्रश्नों, जैसेकि सत् (वास्तविक) एवं जीवन के लक्ष्य (मोक्ष को सम्मिलित करते हुए) के दृष्टिकोण, को देखने का प्रयास करता है, इसके साथ यह खण्ड भारतीय दर्शन के प्रसंग में इन प्रश्नों के उत्तरों के ढंग अथवा ज्ञानमीमांसा के विस्तार को देखने का प्रयास करता है। इस खण्ड की एक इकाई भारतीय ग्रन्थों पर है। इस इकाई में, आप भारतीय संस्कृति के स्रोतों को जानेंगे। यद्यपि, इस इकाई की अध्ययन सामग्री में *वेद* (जिन्हें श्रुति भी कहते हैं) और बौद्ध एवं जैन ग्रन्थों को सम्मिलित नहीं किया गया है। परन्तु, अन्य इकाईयां इन स्रोतों के सन्दर्भ में आरक्षित हैं। अतः यह इकाई, केवल अग्रलिखित को सम्मिलित करती है स्मृति, पुराण, वेदांग और महाकाव्य। दर्शन में भारतीय ग्रन्थों की प्रासंगिकता "महाकाव्यों का दर्शन" नामक इकाई की ओर ले जाती है। प्राचीन भारतीय परम्परा में, अन्य अनेक ग्रन्थों के साथ–साथ तीन मुख्य ग्रन्थ थे जिन पर हिन्दू धर्म और दर्शन विश्वास रखता था; *रामायण, महाभारत,* और *भगवद् गीता*। दर्शन और साहित्य के मध्य गहरा मूल सम्बन्ध

है– और हिन्दू नैतिक दर्शन के अनेक पहलू जैसेकि पुरुषार्थ, मोक्ष का लक्ष्य, कर्म सिद्धान्त आदि– प्राचीन भारतीय साहित्य से प्रभावित थे। यह खण्ड विभिन्न भारतीय दर्शनों में भेदों का परिचय भी देता है तथा विस्तारित रूप से उन्हें आस्तिक और नास्तिक दर्शन प्रणालियां में वर्गीकृत करता है, यह विभाजन इस तथ्य पर आधारित है कि कुछ दर्शन–सम्प्रदाय, जिन्हें दर्शन प्रणालियां कहते हैं, वेद की प्राधिकारिता को स्वीकारते हैं, और जो वेद की प्राधिकारिता/प्रमाणिकता को नहीं स्वीकारते उन्हें नास्तिक सम्प्रदाय कहते हैं। चार्वाक, बौद्ध और जैन नास्तिक दर्शन प्रणालियां हैं, और न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, अद्वैत वेदान्त, विशिष्टाद्वैत आस्तिक दर्शन प्रणालियां हैं।

खण्ड 2 एवं 3 की विषय–वस्तु उपनिषद् हैं। *उपनिषद्* हिन्दू ग्रन्थ हैं जो वेदान्त (शब्दार्थ मीमांसानुसार, वेद का अन्तिम भाग) की मूल शिक्षा को निर्मित करते हैं। ये संस्कृत साहित्य के किसी विशेष कालावधि से सम्बन्धित नहीं हैं, प्राचीनतम, जैसे *बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थों* की रचना–अवधि के पश्च काल में (प्रथम शताब्दी ईसापूर्व लगभग), जबकि नवीनतम उपनिषद् मध्य और प्रारम्भिक आधुनिक कालावधि में रचे गये/संग्रहित हुए। उपनिषदों ने भारतीय दर्शन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला, और ब्रिटिश कवि मार्टिन सेमूर स्मिथ के द्वारा 100 अधिकतम प्रभावोत्पादक पुस्तकों में सम्मिलित किये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि दार्शनिक और भाष्यकार शंकर ने 11 मुख्य उपनिषदों, जिन्हें सामान्य तौर पर प्राचीनतम माना जाता है और उत्तर वैदिक काल एवं मौर्य काल से सम्बन्धित किया जाता है, पर भाष्य लिखा है। वेदान्त दर्शन उपनिषदों के विभिन्न निर्वचनों को रखती है, जैसाकि विभिन्न दार्शनिकों द्वारा किये गये अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत परम्परा के निर्वचन। **खण्ड 2 औपनिषदिक दर्शनः मूल विषय I** वेदान्त दर्शन का परिचय करवाता है, और उपनिषदों में वर्णित मोक्ष के तीन उपागमों/उपायों, कर्म–सिद्धान्त, लक्ष्य आधारित मीमांसा जिसने शनैः–शनैः समस्त भारतीय दर्शनों के नीति सिद्धान्तों को आकार प्रदान किया, आदि को देखने का प्रयास करता है। यह खण्ड *प्रश्न, मुण्डक* और *माण्डूक्य उपनिषद्* के दर्शन की व्याख्या करता है। यह खण्ड आपको उपनिषदों में पाये जाने वाले विभिन्न दार्शनिक एवं वैज्ञानिक मुद्दों के आधारों को देखने में सक्षम बनायेगा। अन्त में, आप यह समझने की स्थिति में होंगे कि भारत में दर्शन केवल बौद्धिक परिश्रम नहीं है, अपितु यह मानवीय जीवन का पथप्रदर्शक भी है।

तृतीय खण्ड **औपनिषदिक दर्शनः मूल विषय II** है। यह खण्ड कुछ प्राचीनतम उपनिषदों जैसे ईश, छान्दोग्य और बृहदारण्यक को सम्मिलित करता है। इस खण्ड में आप ईश, कठ, छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् के दार्शनिक सिद्धान्तों और युक्तियों का अध्ययन करेंगे। इन उपनिषदों के कुछ विचार्य–बिन्दु निम्नलिखित हैं,

ईश उपनिषद् अद्वैत वेदान्त की अद्वय दृष्टि से मनुष्य और क्रिया का सामंजस्य बिठाता है। *कठ उपनिषद्* मनुष्य के जीवन के अन्त के प्रश्न पर विचार करता है। "जब कोई मर जाता है तो क्या होता है? क्या मृत्यु के साथ सब कुछ समाप्त हो जाता है? यह क्या है जो मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहता है?" *छान्दोग्य उपनिषद्* आत्मा और ब्रह्म की तादात्म्यता की व्याख्या करता है, यह वेदान्तिक ब्रह्माण्डीय–उत्पत्ति और जीवन का विकास सम्बन्धी विचार की भी व्याख्या करता है। *बृहदारण्यक उपनिषद्* आत्मा की तरह पहचाने गये ब्रह्म के सर्व–प्रकाशक, परम, स्व–प्रकाश और आनन्दमय सत् को उदाहरणों से स्पष्ट करता है।

खण्ड 4 एवं 5 की विषय–वस्तु भारतीय दर्शन प्रणालियां (सम्प्रदाय) हैं। भारतीय दर्शन की प्रणालियां मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित हैं; नास्तिक और आस्तिक। जो वेदों की प्रामाण्यता को नहीं स्वीकारते वे नास्तिक प्रणालियां और जो वेद की प्रामाण्यता को स्वीकारते हैं वे आस्तिक कहलाते हैं। चार्वाक, जैन और बौद्ध नास्तिक दर्शन–सम्प्रदाय हैं।

चतुर्थ खण्ड नास्तिक दर्शन प्रणालियां, चार इकाईयों को सम्मिलित करता है। यह खण्ड चार्वाक, जैन और बौद्ध दर्शनों की तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा और नीतिमीमांसा का परिचय प्रदान करवाता है। इस खण्ड में आप प्रारम्भिक बौद्ध दर्शन, और बौद्ध परम्परा के अन्य विभिन्न दर्शनों का अध्ययन करोगे। आप न केवल बौद्ध परम्परा का विकास, अपितु भारतीय दर्शन की सम्वाद परम्परा की झलक भी देखोगे, कि कैसे एक ही ग्रन्थ या उपदेश के विभिन्न निर्वचन अनेक दार्शनिक विचारों को जन्म देते हैं। यह न केवल बौद्ध दर्शन के बारे में, बल्कि सभी भारतीय दर्शन प्रणालियों के बारे में सत्य है।

अगला खण्ड आस्तिक दर्शन प्रणालियों के बारे में है, जो पांच इकाईयों में विभाजित है। यह विश्वास किया जाता है कि सभी भारतीय दर्शनों की सामान्य विषय–वस्तु सत् के बोध और निर्वचन में एकता और विविधता (अद्वैत और द्वैत) का विचार, तथा मोक्ष प्राप्ति की व्याख्या का प्रयास है। भारतीय दर्शन मुख्यतः 1500 ईसापूर्व से कुछेक शताब्दी ईस्वी में स्वरूप पाते हुए, यहाँ तक कि अस्तित्व–विषयक महत्वपूर्ण सामाजिक–राजनैतिक–आर्थिक मुद्दों की आलोचनात्मक गवेषणा और दार्शनिक निर्वचन के रचनात्मक तरीकों के द्वारा 21वीं सदी में अमर्त्य सेन और अन्य के द्वारा संरचित हो रहा है। इस खण्ड की इकाईयां न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, और मीमांसा दर्शन की तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, नीतिशास्त्र, ईश्वर की अवधारणा, मोक्ष की अवधारणा का वर्णन करती हैं। यह खण्ड प्रत्येक दर्शन के अन्य विभिन्न मतों का वर्णन भी करता है। न्याय–वैशेषिक, सांख्य–योग, मीमांसा–वेदान्त को भारतीय दर्शन की सम्बद्ध प्रणालियां स्वीकारा जाता है।

यह खण्ड वेदान्त दर्शनों और भक्ति सम्प्रदाय का भी वर्णन करता है। वेदान्त पद का अभिधार्थ (सीधा अर्थ) "वेदों का अन्त, वेदों का निष्कर्ष भाग, वैदिक शिक्षा और प्रज्ञा की परिणति"। इस प्रकार मूलतः यह पद उपनिषदों, जोकि वेदों का अन्तिम साहित्यिक उत्पाद है, को संदर्भित करता है। उपनिषदों के मत/विचार वेद का अन्तिम उद्देश्य, अथवा वेदों का सार है। वेदान्त ने उपनिषदों की विभिन्न व्याख्याओं और निर्वचनों को सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार उपनिषद संक्षिप्त एवं सूत्ररूप में प्रेरक अर्थों से परिपूर्ण कथनों से की विपुलता वाले ग्रंथ हैं। दैदीप्यमान महत्व एवं गतिशील अन्तर्प्रज्ञा इन लघु एवं सशक्त कथनों में निबद्ध हैं। संक्षेप में कहा जाये तो इसी कारण से उपनिषदों ने विभिन्न निर्वचनों/व्याख्याओं को जन्म दिया। कालक्रम में, वेदान्त के अनेक सम्प्रदाय उद्भूत हुए, उनमें प्रमुख हैं, शंकर का अद्वैत, रामानुज का विशिष्टाद्वैत और मध्व का द्वैत। इनमें से प्रत्येक का अध्ययन इकाई चार में करेंगे। अन्तिम इकाई शैववाद और वैष्णववाद है, जो विशाल अनुयायियों के साथ हिन्दू श्रद्धा के लोकप्रिय मत हैं। यद्यपि, लोक–प्रचलित हिन्दु विश्वास में शिव त्रिदेवों में से एक हैं और प्रलय (सृष्टि का विनाश/संहार/लय) का दायित्व रखते हैं, जबकि ब्रह्मा और विष्णु क्रमशः सृष्टि–निर्माण और सृष्टि–पालन के देव कहे जाते हैं। शैववाद और वैष्णववाद दोनों भांति–भांति के धार्मिक विश्वास और प्रथायें रखते हैं। इनके अनेक उप–सम्प्रदाय सम्पूर्ण भारत में पाये जाते हैं। उन्हें भारत के अत्यधिक प्राचीन विश्वास के रूप में स्वीकारा जाता है। वेदों में भी इन देवों का अल्प मात्रा में ही सही, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष संदर्भ उपस्थित है। यद्यपि शिव एवं विष्णु के बारे में वैदिक समझ इतनी विकसित नहीं थी कि उन्हें परम सत्ता के रूप में स्वीकारा जाये। मध्यकाल के भक्ति आन्दोलनों के परिणामस्वरूप ये धार्मिक परम्पराएं धार्मिक परिक्षेत्र तथा दार्शनिक क्षेत्र दोनो में विकास की साक्षी रहीं।

डायक्रिटिकल संकेत Diacritical Marks

डायक्रिटिकल संकेत रोमन से भिन्न शैली में लिखी जाने वाली भाषा के शब्दों को रोमन शैली में लिखने के लिए उपयोग किए जाते हैं। अधिकतर मानक पुस्तकों में इनका प्रयोग मिलता है। यह सूची इसलिए दी गई है ताकि यदि आप संदर्भ/सहायक अंग्रेजी–पुस्तकों को पढ़ें तो इन संकेतों के आने पर आपको कठिनाई न हो।

स्वर (Vowels)

Devanāgarī	Transcription		Category
अ	A	A	monophthongs and syllabic liquids
आ	ā/â	Ā/Â	
इ	I	I	
ई	ī/î	Ī/Î	
उ	U	U	
ऊ	ū/û	Ū/Û	
ऋ	ṛ	Ṛ	
ॠ	ṝ	Ṝ	
ऌ	ḷ	Ḷ	
ॡ	ḹ	Ḹ	
ए	E	E	diphthongs
ऐ	Ai	Ai	
ओ	O	O	
औ	Au	Au	
ं	ṁ/ṅ	Ṁ/Ṅ	anusvara
ः	ḥ	Ḥ	visarga
ँ	~		chandrabindu
ऽ	'		avagraha

व्यंजन Consonants					
velars	palatals	retroflexes	dentals	labials	Category
क k K	च c C	ट ṭ Ṭ	त t T	प p P	tenuis stops
ख kh Kh	छ ch Ch	ठ ṭh Ṭh	थ th Th	फ ph Ph	aspirated stops
ग g G	ज j J	ड ḍ Ḍ	द d D	ब b B	voiced stops
घ gh Gh	झ jh Jh	ढ ḍh Ḍh	ध dh Dh	भ bh Bh	breathy-voiced stops
ङ ṅ Ṅ	ञ ñ Ñ	ण ṇ Ṇ	न n N	म m M	nasal stops
ह h H	य y Y	र r R	ल l L	व v V	approximants
	श ś Ś	ष ṣ Ṣ	स s S		sibilants
	क्ष Kṣ	त्र Tr	ज्ञ Jñ		

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

विषय सूची

खण्ड 1 भारतीय दर्शन का परिचय	**11**
इकाई 1 भारतीय दर्शन की रूपरेखा	13
इकाई 2 भारतीय ग्रंथ	30
इकाई 3 महाकाव्यों का दर्शन	47
इकाई 4 नास्तिक एवं आस्तिक दर्शन	60
खण्ड 2 औपनिषदिक दर्शनः मूल विषय–I	**73**
इकाई 5 उपनिषदों के दर्शन का परिचय	75
इकाई 6 मोक्ष के विभिन्न उपागम	91
इकाई 7 प्रश्न उपनिषद्	103
इकाई 8 मुण्डक उपनिषद्	112
इकाई 9 माण्डूक्य उपनिषद्	126
खण्ड 3 औपनिषदिक दर्शनः मूल विषय–II	**139**
इकाई 10 ईश उपनिषद्	141
इकाई 11 कठोपनिषद्	152
इकाई 12 छान्दोग्य उपनिषद्	163
इकाई 13 बृहदारण्यक उपनिषद्	177
खण्ड 4 नास्तिक दर्शन	**187**
इकाई 14 चार्वाक	189
इकाई 15 जैन दर्शन	201
इकाई 16 बौद्ध दर्शन–I	215
इकाई 17 बौद्ध दर्शन–II	228
खण्ड 5 आस्तिक दर्शन	**241**
इकाई 18 न्याय–वैशेषिक	243
इकाई 19 सांख्य–योग	261
इकाई 20 मीमांसा	279
इकाई 21 वेदान्तः शंकर, मध्व, रामानुज	292
इकाई 22 शैव दर्शन और वैष्णव दर्शन	313

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खण्ड 1

भारतीय दर्शन का परिचय

खण्ड परिचय

खण्ड 1 भारतीय दार्शनिक परम्पराओं के परिचय के माध्यम से भारतीय दर्शन की सामान्य विशेषताओं को रेखांकित करने का प्रयास करता है। इस हेतु, इस इकाई में *वेद, उपनिषद्, पुराण* और *महाकाव्य* की दार्शनिक भूमिका को दिखाने का प्रयास किया गया है, ताकि शिक्षार्थी भारतीय दर्शन की न केवल ऐतिहासिक अपितु दार्शनिक उत्पत्ति भी समझ सके।

प्रथम इकाई 'भारतीय दर्शन की रूपरेखा' भारतीय दर्शन की केन्द्रीय विशेषताओं की सहायता से, यह समझने का प्रयास करती है कि क्या भारतीय एवं पाश्चात्य परम्पराओं में कोई मूलभूत अन्तर है, यदि हाँ, तब ये अन्तर क्या हैं, इसके साथ ही यह इकाई इन प्रश्नों को सम्बोधित करती है कि दर्शन क्या है, परम सत्ता/सत् क्या है? आदि। यह कुछ आधारभूत भारतीय सिद्धान्त जैसेकि पुरुषार्थ, वर्णाश्रम इत्यादि की भी चर्चा करती है।

द्वितीय इकाई 'भारतीय ग्रंथ' वेदांग, स्मृति, पुराण आदि की दार्शनिक विचारों को सम्बोधित करती है। इस इकाई में यह देखने का एक प्रयास किया गया है कि कैसे इन ग्रन्थों ने भारतीय दार्शनिक प्रणालियों में भूमिका निभाई। इनके साथ–साथ, *महाभारत* के पात्र विदुर और भीष्म के नैतिक एवं राजनैतिक दर्शन की भी चर्चा की गई है। लेकिन *महाभारत* एवं अन्य महाकाव्यों की विस्तृत चर्चा इस इकाई में सम्मिलित नहीं की गई है क्योंकि अगली इकाई महाकाव्यों के दर्शन पर केन्द्रित है।

तृतीय इकाई 'महाकाव्यों का दर्शन' से सम्बन्धित है। इस इकाई में रामायण, *महाभारत* और *गीता* के दार्शनिक विचारों को देखने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में इन महाकाव्यों द्वारा प्रतिपादित तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा एवं नीति–दर्शनों की चर्चा की गई है।

चतुर्थ इकाई 'नास्तिक एवं आस्तिक दर्शन' में भारतीय दर्शन प्रणालियों में प्रचलित आस्तिक और नास्तिक के विभाजन को सम्बोधित किया गया है। न केवल विभाजन, बल्कि यह इकाई भारतीय दर्शन प्रणालियों के इस विभाजन के आधार की भी व्याख्या करती है।

इकाई 1 भारतीय दर्शन की रूपरेखा[1]

रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 परिचय

1.2 सत् पर दार्शनिकों की दृष्टि

1.3 भारतीय संदर्भ में ज्ञान

1.4 दर्शन और जीवन

1.5 सारांश

1.6 कुंजी शब्द

1.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के प्रमुख उद्देश्यः

- भारतीय दर्शन के बारे में मुख्य रूप से पश्चिमी विद्वानों की भ्रान्तियों तथा कुछ भारतीय विद्वानों की अन्य भ्रांतियों को दूर करना है। भारतीय दर्शन को सही परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए यह आवश्यक है कि इन भ्रांतियों को दूर किया जाए।
- भारतीय संदर्भ में दर्शन और धर्म के बीच अंतर स्पष्ट करना है। यह इकाई प्रदर्शित करती है कि दर्शन को शब्द के कठोर अर्थ में लिया जाए तो दर्शन धर्म जैसा नहीं है। भारतीय सन्दर्भ में कुछ मुख्य दार्शनिक मुद्दे पश्चिम चिन्तन परम्परा की तुलना में बिल्कुल अलग राह पर विकसित हुए हैं।
- भारतीय विचारधारा का सार प्रस्तुत करना है।

1.1 परिचय

भारतीय संदर्भ में दर्शन का अर्थ दर्शन अथवा तत्व माना जाता है। अब हम यह विचार करेंगे कि किस प्रकार दर्शन का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ दर्शन और तत्व के साथ स्वयं को सहस्थापित करता है। 'दृश्यते अनेन इति दर्शनम्'– जिसके माध्यम से तत्व को देखा जाता है। 'देखना' शब्द को अक्षरशः या दार्शनिक दोनों तरीकों से समझा जा सकता है। यद्यपि अंतर अप्रासंगिक है किन्तु यहाँ हम केवल बाद के तरीके पर विचार करेंगे। दार्शनिक अर्थ में 'देखने' का अर्थ 'अनुभूति' करना है। अतः दर्शन का अर्थ अनुभूति करना हुआ। पुनः जब कभी हम अनुभव करते हैं तब हम सदैव किसी विषय की अनुभूति करते हैं। जब हम

[1] प्रो. एम आर नन्दन, दर्शन विभाग, शासकीय महिला महाविद्यालय, मान्डया, अनुवाद– श्री प्रवेश कुमार, दिल्ली

'किसी विषय' का अनुभव नहीं करते हैं तो इसका अर्थ है हमें बिल्कुल भी अनुभूति नहीं हुई है। यदि हम स्मरण करें कि 'जानने' के विषय में जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 'अनुभूति करना' 'जानने' के अनुरूप है और इस प्रकार अनुभूति ज्ञान के सादृश्य है। यह सादृश्यता (सान्यता) लगभग एकैक होती है अर्थात् यह सादृश्यता लगभग समाकारी है। यह पक्ष आगे स्वयं नष्ट हो जायेगा। इस दिशा में आगे बढ़ने से पहले हमें तत्त्य क्या है, के बारे में जानना चाहिए।

तत्त्य शब्द दो शब्दों तत् और त्य से उत्पन्न हुआ है। तत् का अर्थ यह अथवा वह है। और त्य का अर्थ 'तुम' है। अतः तत्त्य का अर्थ व्युत्पत्ति के आधर पर 'तुम वही हो' होता है। भारतीय विचारधारा में तत् किसके लिए प्रयुक्त होता है यह जानना बहुत जरूरी है। यहां इसका अर्थ सत् अथवा 'परम' सत् होता है। इसका अध्ययन दर्शन की एक शाखा तत्यमीमांसा के अन्तर्गत किया जाता है। दर्शन के अर्थ में प्रयुक्त 'वही' से तात्पर्य तत् अर्थात् परम सत् से है। चूँकि दर्शन सत् को जानना है इसलिए इसमें न केवल तत्यमीमांसक घटक सम्मिलित है बल्कि एक महत्वपूर्ण ज्ञानमीमांसात्मक घटक भी सम्मिलित हैं। अतः इन दो घटकों का मेल न्यूनाधिक भारतीय संदर्भ में दर्शन के विवरण को पूरा करता है।

एक अन्य घटक और भी है जिसे समझना अभी शेष है। स्पष्ट रूप से 'त्य' ज्ञाता के लिए प्रयुक्त होता है अर्थात् इसका अर्थ ज्ञानमीमांसात्मक विषय है तथा हम ज्ञानमीमांसात्मक विषय को वास्तविक सत् से जोड़ कर एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्राप्त करते हैं। भारतीय विचारधरा में सत् और व्यक्ति अथवा ज्ञानमीमांसीय विषयी के बीच कोई अन्तर स्पष्ट नहीं किया गया है इसलिए व्युत्पत्तिमूलक रूप से भारतीय विचारधारा में ज्ञान आन्तरिक है। (तथापि यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि ज्ञान (वर्तमान में) अपने व्युत्पत्तिमूलक अर्थ से कहीं आगे बढ़ गया है)। परन्तु उपर्युक्त उपप्रमेय के दार्शनिक अर्थ का अपना आलोचनात्मक महत्व है। जहां कहीं भी व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित है वहां पर मूल्य भी स्वतः ही सम्मिलित हो जाते हैं और इस प्रकार मूल्य मीमांसा दृष्टिगत हो जाती है। जब मनुष्य सत् से परिचित होता है तब यह (सत्) और इससे जुड़े अनेक मुद्दों को स्वर मिल जाता है। इस प्रकार भारतीय संदर्भ में मूल्य न केवल दर्शन की एक विषय सामग्री है बल्कि दर्शन को स्वयं 'मूल्य' माना जाता है। परिणामस्वरूप भारतीय विचारकों का दर्शन के प्रति मूल दृष्टिकोण कुछ विशेष हो जाता है।

1.2 सत् पर दार्शनिकों की दृष्टि

सत् के तार्किक प्रस्तुतीकरण के सम्बन्ध में भारतीय चिन्तन अनिवार्य रूप से बहुलवादी है। सर्वप्रथम हम सत् के विभिन्न प्रकारों से आरंभ कर सकते हैं और ऐसा दो विभिन्न दृष्टिकोणों से किया जाता सकता है।

तालिका 1

सत् के सिद्धांत

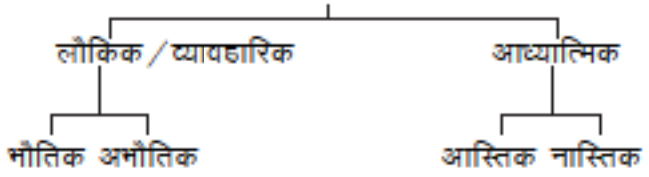

तालिका 2

सत् के सिद्धांत

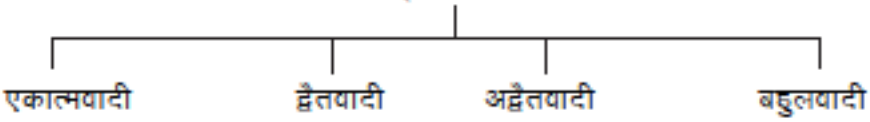

आइए देखें तालिका 1 क्या कहती है। किन्तु पहले इस प्रश्न पर विचार करना लाभदायक होगा कि सत् क्या है। वास्तव में यह अपने आप में एक बहुत कठिन प्रश्न है। शुरूआती क्रम में सत् की परिभाषा यह दी जा सकती है कि सत् वह है जो प्रत्येक वस्तु का परम स्रोत है परन्तु उसका अपना कोई स्रोत नहीं है। अर्थात् जो स्वयंभू है, स्वतंत्र है वही सत् है। दार्शनिक जगत में यह परिभाषा गरमागरम बहस का विषय रही है। यदि हम इसे सत् की काम चलाऊ परिभाषा माने तो आश्चर्यजनक रूप से हम पाते हैं कि प्राचीन भारतीय दार्शनिकों ने इसके विभिन्न उत्तर दिये हैं। उनके उत्तरों की यह बहुलता हमें फेयरबेण्ड के 'प्रोलिफेरेसन ऑफ एन ओसीन ऑफ थ्योरीस' वाक्यांश की याद दिलाती है। अतीत में प्रचलित व्यापक विश्वास के विपरित, सभी भारतीय विचारकों ने सत् को अध्यात्मिक नहीं माना है। न ही उन्होंने इसे सर्वसम्मति से लौकिक माना है। वास्तव में, दर्शन जैसा एक जटिल विषय इस प्रकार के साधारण विभाजन की अनुमति नहीं देता है। निश्चित रूप से कुछ विचारकों ने आध्यात्मिक सत् को स्वीकार किया और इसके विपरीत कुछ अन्य विचारकों ने केवल लौकिक सत् को ही स्वीकार किया। तथापि अनेक मामलों में ये दोनों विभाजन आपस में एक दूसरे से समानता और असमानता दोनों प्रदर्शित करते हैं। परिणामस्वरूप हम पाते हैं कि सत् के लौकिक और आध्यात्मिक दो रूप हैं। निष्कर्ष यह निकलता है कि भारत में विचारकों ने न तो इस जगत का और न ही किसी सम्भावित (आध्यात्मिक) जगत (यदि विद्यमान है तो) की उपेक्षा की है। इस महत्वपूर्ण पक्ष को हमें सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

स्तर 2 पर लौकिक और आध्यात्मिक सिद्धांतों का विभाजन परस्पर विशिष्ट और विस्तृत है अर्थात् एक ओर यह भौतिक और अभौतिक का विभाजन है तथा दूसरी ओर आस्तिक और नास्तिक का विभाजन है। यद्यपि लौकिक क्षेत्र का (आध्यात्मिक क्षेत्र का भी) यह विभाजन पूर्णतः स्पष्ट एवं विशिष्ट होता है परन्तु लौकिक सिद्धांत बिना किसी आत्म–विरोध के आध्यात्मिक सिद्धांत के किसी भी विभाजन के साथ सहमति प्रदर्शित कर सकता है इस आधार पर उपरोक्त चार विकल्पों के निम्नलिखित चार संयोजन बनते हैं;

1. भौतिक आस्तिक
2. भौतिक नास्तिक
3. अभौतिक आस्तिक
4. अभौतिक नास्तिक

आइए इन शब्दों के अर्थ जानें। जो सिद्धांत जगत की स्वतंत्र सत्ता मानता है भौतिक है। इसी प्रकार, यह सिद्धांत जो भौतिक जगत की अपेक्षा किसी अन्य (आध्यात्मिक) पदार्थ की स्वतंत्र सत्ता मानता है, अभौतिक है। भौतिक जगत को सत् मानने में नास्तिक होने की जरूरत नहीं है। सत् का कोई सिद्धांत बिना किसी आत्म–विरोध के विश्व और ईश्वर को समान स्तर प्रदान कर सकता है। द्वैत और वैशेषिक दर्शन सत् की पहली व्याख्या करते हैं और चार्वाक बाद वाली व्याख्या करता है नीचे दिये गए आरेख से यह स्पष्ट हो जाता है–

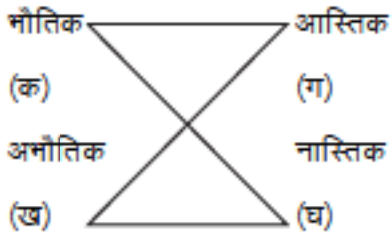

यहां क और ख का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है और इसी प्रकार ग और घ का भी सम्बंध नहीं है। पश्चिमी परंपरा में 'मन' को अभौतिक माना गया है। किन्तु भारतीय संदर्भ में ऐसा नहीं है क्योंकि कम से कम कुछ भारतीय विचारधाराएं मन को छठी ज्ञानेन्द्रि मानती है। सांख्य मन को प्रकृति से उत्पन्न मानता है। इस प्रकार यह उतना ही भौतिक है, जितनी कोई अन्य ज्ञानेन्द्रि। वैशेषिक एक अन्य ऐसी विचारधारा है जिसे इस सम्बन्ध में सांख्य के साथ रखा जाता है। अब हमें दो मुख्य तात्विक शब्दों – यथार्थवाद और आदर्शवाद को जानना चाहिए। यथार्थवाद अपनी सभी भिन्नताओं के साथ बाह्य जगत को नितांत वास्तविक मानता है जबकि आदर्शवाद अपनी सभी भिन्नताओं के साथ बाह्य जगत को मन की उत्पत्ति मानता है। स्पष्टतः यहां मन को छठी ज्ञानेन्द्रि नहीं समझा जाना चाहिए। योगाचार, एक अन्य बाद वाली बौद्ध विचारधारा, इस विषय पर आदर्शवाद का समर्थन करती है।

अब यह स्पष्ट है कि (क) और (ख) परस्पर एक दूसरे से अलग और बिल्कुल विस्तृत है। (घ) के अंतर्गत दो उपभाग है; नास्तिक और अज्ञेयवादी। अब एक ओर (ग) आस्तिक है तो वहीं दूसरी ओर (घ) नास्तिक और अज्ञेयवादी है। ये दोनों परस्पर अलग–अलग हैं और पूर्णतया विस्तृत हैं। चूंकि नास्तिक और अज्ञेयवादी सिद्धांत दार्शनिक रूप से अलग–अलग हैं अतः दूसरे और चौथे प्रकारों का पुनः दो दो बार विभाजन किया जाता है। इसी प्रकार चार की बजाय हमारे पास छह सिद्धांत हो जाते हैं। प्रत्येक सिद्धांत प्रत्येक अन्य दूसरे सिद्धांत से अलग हैं। कभी–कभी यह अन्तर बहुत बड़ा होता है और कभी कभी छोटा होता है। अतः भारतीय दर्शन में कोई साधारण और सरल विभाजन नहीं है बल्कि जटिलता और विविधता को भारतीय विचारधारा की प्रमुख विशेषताएँ माना जाता है। यह पहलू तब और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है जब तालिका 1 और तालिका 2 एक दूसरे का प्रतिच्छेद करती हैं। इस प्रतिच्छेदन पर विचार करने से पहले हमें तालिका 2 पर प्रकाश डालना चाहिए।

तालिका –2 सत् के सिद्धांतों को स्पष्ट करती है और संख्या के आधार पर इनमें भेद बताती है अर्थात् वास्तविक पदार्थों की संख्या अंतर बताने की कसौटी बन जाती है। एक सत्तावाद अथवा अद्वैतवाद मानता है कि सत् एक है। द्वैतवादी और बहुलवादी सिद्धांत के तात्पर्य स्वतः ही स्पष्ट है क्योंकि इनका अर्थ क्रमशः 'दो' अथवा 'दो' से अधिक है।

अद्वैतवादी सिद्धांत अपने आप में अद्भूत है। यह संख्या के बारे में कोई दावा नहीं करता बल्कि यह द्वैतवाद को अस्वीकार करता है। ध्यान रहे यदि द्वैतवाद स्वीकार्य नहीं हो तो बहुलवाद भी स्वीकार्य नहीं होगा। उपनिषद् अद्वैतवादी हैं और वैशेषिक बहुलवादी है।

अब हम तालिका 1 और 2 को मिलाएंगे इस प्रकार के एकीकरण से सभी चौबीस दार्शनिक पद्धतियां प्राप्त हो जाती हैं। इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि ये चौबीस दार्शनिक पद्धतियां एक ही समय में एक साथ उभर कर सामने आयीं बल्कि उनमें से अधिकतर कभी इस समय तो कभी उस समय पनपती रहीं।

सत् के सम्बन्ध में विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय और पश्चिमी परंपराओं में कोई गुणात्मक अंतर नहीं है। प्रश्न समान हैं क्योंकि समस्याएं भी समान है। समान प्रकार के प्रश्नों के उत्तर भिन्न–2 व्यक्तियों के लिये अलग–अलग समय एवं स्थानों में भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। प्रायः स्थानिक–कालिक कारक समाधानों का आकलन करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। ज्ञान से सम्बन्धित मुद्दों पर विचार करने के पश्चात अंतिम पहलू स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्य : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. दर्शन' पद का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. भारतीय दार्शनिक संदर्भ में दर्शन को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.3 भारतीय संदर्भ में ज्ञान

जानने की इच्छा केवल मानव का कोई असाधारण गुण नहीं है बल्कि यह वृत्ति पशुओं में भी देखी जा सकती है। यद्यपि इस सम्बन्ध में इन दोनों में अन्य स्तरों पर बड़े अन्तर पाये जाते हैं। पहला अन्तर यह है कि ज्ञान प्राप्ति की सीमा एवं ज्ञान प्राप्ति की योग्यता प्रत्येक प्रजाति में अलग–अलग होती है। दूसरे, मानव का ज्ञान प्राप्ति का उद्देश्य एवं उसकी ज्ञान की अवधारणा संस्कृति दर संस्कृति बदलती रहती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि संस्कृतियों में उच्च या निम्न क्रम होते हैं। इसका केवल इतना अर्थ है कि ज्ञान की अवधारणाएं संस्कृति के सापेक्ष होती हैं। दर्शन का सार दो मुख्य कारको, उद्देश्य और विचार में निहित हैं।

भारतीय एवं पाश्चात्य अवधारणाओं को चाहे यह प्राचीन हो या आधुनिक, एक दूसरे की आपस में तुलना एवं समालोचना के माध्यम से सबसे अच्छे ढंग से समझा जा सकता है। प्राचीन यूनानियों का ज्ञान के लिए ज्ञान सिद्धांत में विश्वास था जिसने शुद्ध विज्ञान

की उत्पत्ति और विकास को प्रेरणा प्रदान की। इसके विपरीत उत्तर जागरण काल (**Post-renaissance age**) ने 'ज्ञान ही शक्ति है' की घोषणा की। बेकन (**Bacon**) द्वारा प्रतिपादित इस उक्ति ने विज्ञान के विकास की मूल दिशा को सदा के लिए बदल दिया। तथापि प्राचीन भारतीयों ने इससे हट कर एक अलग मनोस्थिति प्रदर्शित की। एक ओर जहां व्यावहारिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उन्होंने औषध और शल्य चिकित्सा का ज्ञान विकसित किया वहीं दूसरी ओर, खगोल विज्ञान और गणित का किसी अन्य विशिष्ट कारण से विकास किया। यह कारण न तो पूरी तरह आध्यात्मिक था और न ही पूरी तरह सांसारिक। उनका उद्देश्य व्यावहारिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए यज्ञ करना और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने के लिए भी यज्ञ करना था। प्राचीन भारतीयों ने यूनानी उक्ति में बिल्कुल विश्वास नहीं किया और शायद न ही उन्होंने इसके बारे में सोचा। यदि हम ज्ञान को मूल्य मानते हैं तो हमें निष्कर्ष निकालना पड़ेगा कि उन्होंने कभी भी इसे स्वयं में मूल्यवान नहीं माना। इस प्रकार उनके लिए ज्ञान मुख्य रूप से एक उपकरण मात्र था। इस विशेषता का अपवाद केवल चार्वाक पद्धति है जिसे ऐपीक्यूरियनवाद का भारतीय प्रतिरूप समझा जाता है।

सीमित अर्थ में, ज्ञान का भारतीय दर्शन बेकन के ज्ञान के दर्शन के अत्यंत निकट है। वास्तव में, भारतीयों ने ज्ञान को शक्ति माना क्योंकि उनके लिए ज्ञान (अर्थात दर्शन) जीवन पद्धति था और यही कारण है कि उनके लिए ज्ञान का कभी भी आन्तरिक मूल्य नहीं रहा। परन्तु यहां 'शक्ति' शब्द के अर्थ को सही परिप्रेक्ष्य में समझना बहुत जरूरी है। जहां बेकन का 'शक्ति' शब्द से अर्थ प्रकृति पर नियंत्रण करने से था परन्तु यहीं भारतीय संदर्भ में शक्ति को प्रकृति के समक्ष अपने आपको समर्पित करने का साधन माना गया। यही प्रमुख सिद्धांत प्राचीन वैदिक विचारधारा की आधारशिला का निर्माण करता है। 'शक्ति' शब्द के अर्थ में यह मूल परिवर्तन उस विश्व दृष्टिकोण में अन्तर को भी स्पष्ट करता है जिसे आसानी से तब देखा जा सकता है जब भारतीयों और यूरोप वासियों (हमारे प्रयोजन के लिए 'पश्चिम' शब्द का अर्थ केवल यूरोप है।) की विश्वास पद्धतियों और मनोवृत्तियों में तुलना एवं अन्तर किया जाता है। बेकन के उत्तरकालीन यूरोप का विश्वास था कि ब्रह्मांड और इसमें मौजूद हर वस्तु मनुष्य का उद्देश्य पूरा करने के लिए है क्योंकि मनुष्य ही ब्रह्मांड का केन्द्र है। (विचार की इस चिंगारी ने वैदिक चिन्तन के विकास के एक निश्चित चरण का स्वरूप निर्धारण किया जिसे बाद में त्याग दिया गया)। दूसरी ओर प्राचीन भारतीय ने अपने आप को प्रकृति के साथ जोड़कर देखा। हमें पुनः बेकन की 'शक्ति' की अवधारणा के साथ–साथ भारतीय परिप्रेक्ष्य में 'शक्ति' की अवधारणा का विश्लेषण करना चाहिए। पहले जो कुछ कहा गया यहां उसे दोहराना केवल परिणामों के आलोचनात्मक महत्व को मजबूत करना भर है। पश्चिम वासियों के लिय ज्ञान न केवल 'शक्ति' था बल्कि यह उनके लिए अपनी आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं को पूरा करने का एक शक्तिशाली हथियार था। पश्चिमवासियों ने कभी भी ज्ञान को कुछ भी प्राप्त करने के माध्यम के रूप में नहीं देखा। यहां तक कि आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी नहीं। जिस प्रकार चार्वाक भारतीय संदर्भ में एक अपवाद है, उसी प्रकार सुकरात और स्पिनोजा को पश्चिमी संदर्भ में अपवाद माना जाता है। भारतीय सांसारिक सुख को चरम नहीं मानते थे। उनके लिए कुछ और तत्व अधिक महत्वपूर्ण और स्थायी था। इसलिए उनके लिए प्रकृति पर विजय प्राप्त करना ज्यादा महत्व नहीं रखता था। संक्षेप में, इस दृष्टिकोण ने पर्याप्त रूप से अनावश्यक विवाद पैदा किए हैं। यह दृष्टिकोण निस्संदेह सही है किन्तु इसे बहुत गलत ढंग से समझा गया है। परिणामस्वरूप गलत ढंग से यह तर्क दिया जाता है कि भारतीय विचारधरा कुल मिलाकर इस संसार और वर्तमान जीवन को पूरी तरह नकारती है तथा इन्हें अप्रासंगिक एवं महत्वहीन मानती है। यह तर्क, पूरी तरह से भारतीय दर्शन

की गलत समझ का परिणाम है एवं मूलतः अनुचित है। यह कहना कि ल की अपेक्षा ग अधिक महत्वपूर्ण है, का अर्थ यह नहीं हो कि ल महत्वहीन है। यदि कोई चीज अधिक महत्वपूर्ण है तो इसका अर्थ है कि अन्य कुछ और चीज 'कम' महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में, भारतीय परंपरा निश्चित रूप से 'वर्तमान' जीवन को महत्वपूर्ण मानती है परंतु स्वयं को यहीं तक सीमित नहीं करती बल्कि यह इससे आगे तक जाती है। इस बिंदु को तीसरे अध्याय में स्पष्ट किया गया है।

स्पष्ट रूप से भारतीय परंपरा पश्चिमी परंपरा के विपरीत मूल्यों के एक निश्चित सोपानक्रम को बनाए रखती है। जीवन पद्धति के रूप में ज्ञान न केवल सभी प्रकार के मूल्यों को समाहित करता है बल्कि यह व्यक्ति के स्वयं के परिप्रेक्ष्य को भी बदलता हैं तद्नुसार जीवन में तथा कथाकथित आध्यात्मिक ज्ञान केवल ज्ञानी व्यक्ति द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। यहां इस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि अज्ञान अथवा अविद्या विशेषकर आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्त करने में तथा सामान्य रूप से कोई भी अन्य लक्ष्य प्राप्त करने में बाधा है। इस प्रकार एक सच्चे ज्ञानी के विचार एवं व्यवहार अज्ञानी से अलग होते हैं। तथा भारतीय दर्शन की यह विशेषता अपने आप में विशिष्ट है जिसका पश्चिमी दार्शनिक परम्परा में पूर्ण अभाव है।

यह आवश्यक नहीं है कि किसी दार्शनिक का निजी जीवन उसके दार्शनिक विचारों के साथ कुछ इस अर्थ में मेल खाये कि उसका जीवन उससे कम ज्ञानी व्यक्तियों के लिए एक अनुकरणीय रूप में आदर्श स्थापित करे। इस विषय पर यदि सुकरात और स्पिनोजा एक छोर पर हैं तो बेकन और हाइडेगर विपरीत छोर पर। बात यह है कि भारतीय परंपरा में दर्शन और मूल्य को अलग नहीं किया जा सकता जबकि पश्चिम में ऐसा नहीं है। पश्चिम में दार्शनिक मूल्यों के स्तर पर कोई दार्शनिक कठोर अपराधी से भी बुरा (ऐसा नहीं है कि यहां है) हो सकता है परंतु भारतीय संदर्भ में इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

भारतीय दर्शन के संदर्भ में मूल्यों की इस प्रधानता ने एक बड़ी हॉरमेन्यूटिक चूक को जन्म दिया। बिना सोचे समझे आलोचकों ने निरंतर तर्क दिये कि भारतीय दर्शन कभी भी धर्म से पृथक नहीं रहा है। अतः भारत में, आलोचकों के अनुसार, सही अर्थों में न कोई दर्शन था और (जनजातीय धर्म को छोड़कर) न कोई धर्म था। अतः तथाकथित हिंदू धर्म का अनुचित अर्थ नहीं लगाते हुए इसे धर्म से नहीं जोड़ना चाहिए। यह भ्रम इसलिए उत्पन्न हुआ क्योंकि अनेक विद्वानों में धर्म को आध्यात्मिकता के साथ जोड़ कर देखा। भारतीय दर्शन के चारों ओर छाए धुंधलके को एक सामान्यानुमान के द्वारा दूर किया जा सकता है। पश्चिमी दर्शन इसाई दर्शन और यहूदी दर्शन में विभाजित नहीं है तथापि सभी पश्चिमी दार्शनिक (यूनानी दार्शनिकों को छोड़कर) ढीले अर्थ में या तो इसाई हैं अथवा यहूदी। ठीक इसी प्रकार से, 'हिन्दू दर्शन' को धर्म के अर्थ में समझना अत्याधिक अनुचित है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ना चाहिए कि अधिकतर भारतीय दार्शनिक 'प्रतिबद्ध' हिंदू थे। यह सच है कि भारत में दार्शनिक (जैसे कि रामानुज और मध्व) धार्मिक समूहों अथवा संप्रदायों के संस्थापक बन गए थे। परंतु ठीक इसी प्रकार पश्चिम में सेंट आगस्टीन, सेंट एक्यानस आदि भी थे। जबकि कोई भी उनके दर्शन को इसाई दर्शन नहीं कहता। फिर भी निश्चित रूप से भारतीय परम्परा में बौद्ध और जैन दर्शन शुद्ध दर्शन हैं क्योंकि कड़े शब्दों में कहें तो न तो बौद्ध धर्म और न ही जैन धर्म कोई धर्म है। यहां पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि बौद्ध दर्शन है तो हिंदु दर्शन क्यों नहीं है? इस प्रकार के दर्शन की बात करना घोड़े के आगे गाड़ी रखना है। भारत में दर्शन की उत्पत्ति सनातन धर्म, प्रसिद्ध रूप में कहें तो हिंदू धर्म, से नहीं हुई है बल्कि इसका उलट सत्य है।

अतः पश्चिमी परंपरा के बिल्कुल विपरीत भारतीय दर्शन पूरी तरह आध्यात्मिक है। पूर्व में जब यह कहा गया कि भारतीय में दर्शन भी ज्ञान को शक्ति समझा जाता है तो इससे तात्पर्य यह था कि यहां ज्ञान को आध्यात्मिक शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। भारतीय दार्शनिकों के लिए ज्ञान एक ऐसी आध्यात्मिक शक्ति थी जो अपने स्वरूप में बिल्कुल अधार्मिक होती है।

यह समझना गलत होगा कि आध्यात्मिकता को केवल ज्ञान में ही देखा जा सकता है। सत् और सौन्दर्य मूल्यों का विचार भी आध्यात्म विभूषित है। उपनिषदीय और अद्वैतीय ग्रंथों में ब्रह्म का विचार इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। यह आध्यात्मिक इसलिए है क्योंकि यह न तो सांसारिक है और न ही धार्मिक है। यदि ज्ञान आध्यात्मिक है तो इसका विषय (प्रमा) भी अध्यात्मिक होना चाहिए। रसो वै सः (अर्थात वास्तव में रस) सौंदर्यपरक मूल्य के आध्यात्मिक होना चाहिए। रसो वै सः (अर्थात वास्तव में रस) सौंदर्यपरक मूल्य के आध्यात्मिक स्तर का होने का एक उदाहरण है। इस अर्थ में 'यह' (सः) कम से कम एक व्याख्या के अनुसार 'परा ब्रह्म' अथवा परम सत् है और 'रसा' का अर्थ सुंदरता हो सकता है। यह सम्भव है कि दर्शन में निहित तात्विक अथवा आध्यात्मिक तत्वों का धर्मों द्वारा अपने देवताओं (और संभवतः अपने विरोधियों का प्रतिकार करने के लिए) का स्वरूप निर्धारण करने के उद्देश्य से उपयोग कर लिया गया हो।

आइए, भारतीय दर्शन में ज्ञान की अवधारणा पर पुनः बात करें। भारतीय दर्शन दो स्तरों, परा विद्या (उच्चतर ज्ञान) और अपरा विद्या (निम्नतर ज्ञान) के ज्ञान को स्वीकार करता है। चूंकि ज्ञान आध्यात्मिक है, इसलिए केवल परा विद्या ही सच्चा ज्ञान है जबकि अपरा विद्या सख्त शब्दों में कहें तो बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है। जहाँ उपनिषद इस विचार का समर्थन करते हैं वहीं बाद की पद्धतियों (पूर्व मीमांसा को छोड़ कर), जिन्हें उपनिषदों पर टीकाएं माना जाता है, ने प्रत्यक्ष को ज्ञान का साधन माना। उपमान एक अन्य दूसरा प्रमाण है। न केवल निम्नतर ज्ञान (अपरा विद्या) बल्कि भ्रांतिपूर्ण ज्ञान (अख्याति) को भी दर्शन की भारतीय पद्धतियों द्वारा ज्ञान का एक प्रकार माना। अतः इस प्रकार अपरा विद्या ने भी अपना स्थान बनाए रखा। अब प्रश्न यह है कि क्या भारतीय दर्शन अध्यात्मिक जीवन को सांसारिक कार्यों से जोड़ता है? यहाँ यदि आध्यात्मिक जीवन सांसारिक कार्यों को अस्वीकार करना है तो उत्तर नहीं में है। सच्चाई यह है कि आध्यात्मिक जीवन से तात्पर्य सांसारिक जीवन का समर्थन नहीं करता। इस स्थिति में इन दोनों का ऐकीकरण आवश्यक है और इसे बहुत अच्छे ढंग से 'पुरुषार्थ' विचार के द्वारा प्राप्त किया गया। 'पुरुषार्थ' से स्पष्ट है कि धर्म अर्थात उचित साध्नों के द्वारा ही मनुष्य को अर्थ (संपत्ति) की प्राप्ति तथा काम (इंद्रिय सम्बन्धी कोई भी इच्छा) की उचित संतुष्टि करनी चाहिए और इन्हीं साधनों से मोक्ष भी प्राप्त होता है। जहां तक सामाजिक दर्शन और नैतिक दर्शन से सम्बन्धित समस्याओं का प्रश्न है तो मितव्ययिता का सिद्धांत बहुत अच्छी तरह से इनका समाधान कर देता है।

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्यः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. 'ज्ञान शक्ति है' इस सिद्धान्त को भारतीय दार्शनिक संदर्भ में विश्लेषित कीजिए।

.....

---

2. "हिन्दू दर्शन" पद के अनुप्रयोग की सम्भावना पर टिप्पणी लिखिए।

1.4 दर्शन और जीवन

पूर्व में यह बताया जा चुका है कि भारतीय परम्परा में दर्शन को स्वयं में मूल्य माना गया है तथा मूल्य एवं मानव जीवन दोनों एक दूसरे से गुंथे हुऐ हैं। जीवन का उद्देश्य क्या है? इस प्रश्न के आधार पर भारतीय दर्शन की इस समस्या का समाधान खोजना सरल है। पश्चिम परंपरा (यह सच है कि अस्तित्ववाद में यह प्रयास किया गया परंतु यह अपने आप तक ही सीमित रहा और दर्शन की विश्लेषणात्मक परंपरा द्वारा नष्ट कर दिया गया। में इस समस्या का समाधान ढूंढना आसान नहीं है। भारतीय परंपरा के अनुसार, जीवन का उद्देश्य दुख से सुख की ओर प्रस्थान करना है। यह एकमात्र सूत्र सम्पूर्ण भारतीय दर्शन में फैला हुआ है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में एक ऊर्ध्वाधर विभाजन देखने को मिलता है जिसके फलस्वरूप सनातनी और असनातनी विचारधाराओं का जन्म हुआ। तथापि, भारतीयों के इस मुद्दे पर अर्थात 'जीवन के उद्देश्य' पर सहमत होते हुए भी उन्हें वैदिक और अवैदिक खेमों में विभाजित किया जाता है (यद्यपि यह विभाजन संतोषजनक नहीं है) एक दूसरे में विरोधी होते हुए भी भारतीय दार्शनिकों ने एक साझे लक्ष्य को अपनाया। अब सवाल यह है कि किस अर्थ में यह लक्ष्य एक दार्शनिक मुद्दा है? दूसरे, किन्हीं दो विपरीत विचारधाराओं का कोई साझा लक्ष्य कैसे हो सकता है?

पहले प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि मूल्य के रूप में ज्ञान स्वयं अद्भुत है। यदि जीवन–शैली में गुणात्मक अन्तर पैदा करने वाले किसी साधन का आर्थिक मूल्य है तब, दूसरे ढंग से देखे तो, यह प्रत्येक ज्ञान भी, जो जीवन–शैली को परिवर्तित करता है, मूल्यवान होना चाहिए। अतः ज्ञान भारतीय विचारधारा में विशिष्ट रूप में मूल्यवान होता है। इस प्रकार, जीवन का उद्देश्य एक नैतिक मुद्दा बन जाता है। और इस अर्थ में, यह दार्शनिक मुद्दा हो जाता है।

दूसरे प्रश्न का उत्तर और भी सरल है। दर्शन की सभी विचारधाराएँ एकमत से स्वीकार करती है कि सुख (आनंद) की खोज मानव का एकमात्र लक्ष्य है। परन्तु यह सहमति यहीं तक है। क्योंकि ये दोनों विपरीत खेमे सुख की व्याख्या के मुद्दे पर भिन्न–भिन्न विचार रखते हैं। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट की जासकती है। सभी राजनीतिक दल अपने–अपने

घोषणापत्रों में घोषणा करते हैं कि उनका एकमात्र उद्देश्य दबे–कुचले लोगों को ऊपर उठाना है। परंतु ऐसा करने का ढंग प्रत्येक दल का अलग–अलग होता है। अब स्थिति स्पष्ट है। सुख क्या है और कैसे प्राप्त होता है इस पर सनातनी और असनातनी विचारधाराओं में मतभेद है। असनातन पद्धति में भी सुख का विचार अलग–अलग है। चार्वाक विचारधारा का मानना है कि सुख आनंद में निहित है जबकि बौद्ध धर्म मानता है कि यदि सुख को दुख की समाप्ति माना जाए तो सुख निर्वाण में निहित है।

पहले बताया जा चुका है कि आध्यात्मिकता भारतीय दर्शन का सार है। इस पृष्ठभूमि के आधार पर आइए विश्लेषण करें कि आनन्द क्या है। न तो यह भौतिक संसार और न ही भौतिक सुख स्थायी है। और न ही ये अंतिम हैं। सम्भवतः कोई भी व्यक्ति यह नहीं मानता कि संसार नित्य है। तथापि अधिकांश व्यक्ति इस फेर में नहीं पड़ते कि इस सीमित संसार के अंदर नित्य शान्ति य आनन्द संभव है अथवा नहीं। इस प्रकार का गुढ़ चिन्तन ही भारतीय दर्शन को विशेष बनाता है।

अमरत्व प्राप्त करने की इच्छा यूनानी और भारतीय परम्पराओं में समानरूप से पाई जाती है। तथापि, भारतीय परम्परा में यह इच्छा अलग रूप लेती है। इस प्रकार दुःखों से स्थायी मुक्ति ही अमरत्व है। इसे विभिन्न रूप से मोक्ष, निर्वाण आदि नाम दिए जाते हैं। अपने साधारण अर्थ में वैराग्य का अर्थ त्याग करना है परन्तु वास्तविक अर्थ में जिसका त्याग करना है यह आनन्द नहीं है बल्कि सुख है। वैराग्य ज्ञान के साथ मिलकर नित्य आनन्द प्रदान करता है। अतः भारतीय संदर्भ में वैराग्य का लक्ष्य सांसारिक सुखों का परित्याग करना एवं नित्य आनन्द की प्राप्ति करना है।

स्पष्टतः भौतिक संसार का परित्याग अथवा सन्यास मूलतः आपत्तियों को आमन्त्रित करता है। परन्तु कम से कम एक निश्चित अर्थ में इस प्रकार के परित्याग का समर्थन किया जा सकता है। वैराग्य का अर्थ लोभ का उन्मूलन और जीवन में संतोष का समावेशन करना है। यह वैराग्य का छिपा हुआ अर्थ है। किन्तु दोनों आयामों की अक्सर गलत तरह से व्याख्या की जाती रही है और निष्कर्ष निकला जाता रहा है कि वैराग्य न केवल नकारात्मक हैं बल्कि यह निराशावाद को भी जन्म देता है। यह नकारात्मक विचार यहीं तक सीमित नहीं रहा बल्कि पूरे भारतीय दर्शन में विस्तारित हो गया।

यहां पर यह स्पष्ट जरूरी है कि 20वीं शताब्दी में पश्चिमवासियों का मानना था कि भारत में दर्शन जैसा कुछ नहीं है। दर्शन के नाम पर यहां केवल मिथक और किंकर्तव्यमीमांसा का बोलबाला है जहां पश्चिमी विद्वानों का मानना था कि भारत में दर्शन धर्म द्वारा पूर्णतः दूषित है यहीं मार्क्सवाद के प्रभाव के अंतर्गत कुछ भारतीय विद्वान भारतीय समाज को आक्रांत करने वाले रीति–रिवाजों और परंपराओं से दर्शन को पृथक करने में असफल रहे। यद्यपि उनके तर्कों और वितर्कों के गुण–दोष पर बात करना अब प्रासंगिक नहीं है।

परन्तु इस स्थिति में यह जानना महत्वपूर्ण हो जाता है कि किसी प्रकार वैश्यिक धर्म को दार्शनिक आधार पर निर्मित किया जाय। यदि विश्व धर्म को जनजातीय धर्म के अर्थ में धर्म माना जाये तो दर्शन के साथ इसका सम्बन्ध बैठा पाना मुश्किल है इस अर्थ में भारत में दर्शन धर्म से कभी प्रभावित नहीं था। बल्कि विभिन्न धार्मिक मत, जो बाद में आए, दर्शन से प्रभावित अवश्य थे।

परंतु उन विद्वानों की आलोचनाएं हमारे लिये महत्वपूर्ण है जो यह स्वीकार करते हैं कि प्राचीन भारत में दार्शनिक विचारधाराऐं विद्यमान थी। एक आलोचना के अनुसार, चूंकि

भारतीय विचारधारा भौतिक जगत के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करती है एवं उसकी वास्तविकता को नकारती है इसलिए यह आत्म–घाती है। इस आलोचना का दो स्तरों से खण्डन किया जा सकता है। सर्वप्रथम, भारतीय दर्शन पूरी तरह से भौतिक संसार को नहीं नकारता। कोई दर्शन पद्धति सैद्धांतिक रूप से इसलिए नकारात्मक नहीं कही जा सकती क्योंकि यह जगत को अस्थायी मानती है और उसके लिए जो अस्थाई है यह परम सत् नहीं हो सकता। यहां तक कि किसी भी वैज्ञानिक ने ब्रह्माण्ड को शाश्वत कहने की हिम्मत नहीं की है। यदि इस आलोचना के तर्क को सही माना जाए तो प्लेटो का दर्शन भी स्वाभाविक रूप से नकारात्मक हो जाता है।

प्लेटो की भांति भारतीय दार्शनिकों ने भी कुछ स्थायी तत्व स्वीकार किय हैं। वास्तव में अस्थायित्व और स्थयित्व सापेक्ष शब्द है। उनमें से किसी एक की प्रासंगिकता के लिए दूसरे की प्रासंगिकता की जरूरत पड़ती है। दूसरी ओर जो कुछ सापेक्ष होता है यह हमेशा कुछ अलग वस्तु से सापेक्ष होता है। पूर्ण सापेक्षता जैसी कोई चीज नहीं होती है। अंतिम दोनों कथन जो वास्तव में सापेक्षता के सिद्धांत के सार को स्पष्ट करते हैं यह यहां पर भी लागू होते हैं।

आइए, खण्डन के दूसरे स्तर पर विचार करें। क्या किसी भी सिद्धांत को नकारात्मक मानना वैध है। तर्क के अन्तर्गत खण्डन करना एक महत्वपूर्ण सोपान है। परंतु यह अंतिम नहीं है। यदि विज्ञान को नकारात्मक आवश्यकता जैसे की असत्यपानीयता को सन्तुष्ट करने के अर्थ में परिभाषित किया जा सकता है तो दर्शन शास्त्र, चाहे भारतीय हो या पाश्चात्य, को भी इसी अर्थ में (कार्ल पॉपर, 1959, पृष्ठ 41) समझना चाहिए। किसी हद तक भारतीय दर्शन इसी 'खण्डन से मण्डन' के सिद्धांत का अनुसरण करता है। स्पष्टतः यह सिद्धान्त कार्ल पॉपर द्वारा दिया गया है।

दूसरी आलोचना के अनुसार, भारतीय दर्शन निराशावादी है। कोई भी सिद्धांत जो इस संसार और जीवन को पूर्ण अर्थ में अस्वीकार करता है निराशावादी होगा ही। इस आलोचना के दो आधार हैं। पहला, गलत ढंग से दुख से पलायन की इच्छा को बाह्य जगत से पलायन की इच्छा के रूप में समझा गया। दूसरा, भारतीय दर्शन भौतिक सुखों का समर्थन नहीं करता। आइए हम दूसरे पर विचार करत हैं। भौतिक सुखों के खण्डन का अर्थ परम आनन्द का खण्डन नहीं है क्योंकि आनन्द और सुख प्रत्यक्षरूप से अलग–अलग है। मोक्ष केवल आनन्द का संस्कृत रूप है। सुख न केवल क्षणिक है बल्कि यह इस अर्थ में शुद्ध नहीं है कि सुख सदैव दुःख को लेकर आता है। यदि हम बैंथम के मानदंडों को माने तो ये मानदंड सुख को नहीं बल्कि आनन्द को सन्तुष्ट करते हैं। वास्तव में सुख की नहीं बल्कि आनन्द की पहचान हैं। शायद केवल निकटता ही सुख को संतुष्ट करती है। यदि ऐसा है तो व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी यदि कोई दर्शन मोक्ष से आदर्श मानता है तो भी उसे निराशावादी नहीं कहा जा सकता।

आइए, अब हम पहले स्रोत पर चर्चा करें कि भौतिक संसार से पलायन की इच्छा होना पलायनवादी मनोस्थिति को प्रदर्शित करती है। पुनर्जन्म केवल एक ऐसा मिथक हो सकता है जिसका सत्यापन सम्भव न हो। परंतु इस संसार में पुनर्जन्म की घटनाएं पायी जाती हैं। यदि मोक्ष की प्राप्ति किसी व्यक्ति के जीवन काल के दौरान ही सम्भव हो (जिसे जीवन मुक्ति कहा जाता है), तो भौतिक संसार को बुरा मानने और उसे त्याज्य मानने का कोई कारण नहीं है। तथापि इसके बाद भी न केवल भारतीय दर्शन के आलोचकों बल्कि समर्थकों ने भी मोक्ष की अवधारणा को गलत ढंग से समझा और इसी गलत समझ ने बाहरी संसार को मूलरूप से बुरा एवं त्याज्य मानने की गलती को जन्म दिया।

मोक्ष के प्रति एक और आपत्ति उठाई जा सकती है कि क्या मोक्ष सार्थक 'आदर्श' है? इस परिप्रेक्ष्य से पहले तो मोक्ष का अस्तित्व सम्भव होना चाहिए और दूसरे, मनुष्य को इसकी प्राप्ति होना भी सम्भव होना चाहिए। परन्तु यदि इन दोनों में से कोई भी एक सम्भावना सत्य न हो तब भी क्या मोक्ष एक 'आदर्श' रह जायेगा। चलो मान लेते हैं कि मानव के लिये मोक्ष प्राप्त करना सम्भव है। इस स्थिति में यह 'आदर्श' बना रहता है। परन्तु यदि इसके विपरित हम यह मान ले कि मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है तो ऐसा मानने में भी कोई हानि नहीं है। यदि हम किसी अप्राप्य 'आदर्श' की खोज करते हैं तो हम उस 'आदर्श' की ओर बढ़ते हुए उत्तरोत्तर अपनी उन्नति करते हैं। महत्वपूर्ण तो उन्नति करना ही है। प्लेटो का यूटोपिया एक ऐसा उदाहरण है जो इस संबंध में मोक्ष के 'आदर्श' के अत्यंत निकट है। प्लेटो का यूटोपिया एक ऐसा उदाहरण है जो इस संबंध में मोक्ष के 'आदर्श' के अत्यंत निकट है। सही दिशा में प्रगति ही सही अर्थों में प्रगति होती है। इसलिए पूरी तरह से ज्ञान होने के बाद भी कि मोक्ष जैसे 'आदर्श' को प्राप्त करना मानव के लिए असंभव है। मानव मोक्ष प्राप्त करना चाहता है और इस प्रकार मानव निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर प्रगति करता है। यह मोक्ष को आदर्श के रूप में स्वीकार करने का एक लाभ है।

पश्चिमी परंपरा में केवल यूनानी ही आत्मा की अमरता में विश्वास करते थे। तथापि पश्चिमी दर्शन में यह विश्वास नहीं था परन्तु इसाई धर्म में इसे अवश्य स्थान मिला। यहां पर विरोधाभास यह है कि आत्मा की अमरता इसाई धर्म और भारतीय दर्शन में सामूहिक विषय है जबकि इसे पश्चिमी दर्शन और इसाई धर्म में सामूहिक रूप से होना चाहिए था क्योंकि पश्चिम इसाई धर्म की मुख्य भूमि है। यह एक महत्वपूर्ण कारक को इंगित करता है कि धर्म से दर्शन निर्धारण नहीं होता बल्कि इसके विपरीत यदि दर्शन में धर्म का निध ाॅरण करने की क्षमता नहीं भी होता है तो इसमें कम से कम धर्म को प्रभावित करने की अनिवार्य क्षमता तो अवश्य होती है।

हम देखते हैं कि मोक्ष, निर्वाण, समस्त दुःखों की पूर्ण समाप्ति भारतीय दर्शनों के लक्ष्य हैं। कुछ विद्वान कहते हैं कि भारतीय दर्शन का एक पारमार्थिक उद्देश्य है। लेकिन यह विचार भी विवाद से परे नहीं है। कुछ विद्वान भारतीय दर्शन को जीवन–दर्शन के रूप में स्वीकारते हैं और इसी आधार पर कहते हैं कि यह दर्शन है, कुछ विद्वान इसी बात के आधार पर इसे दर्शन से भिन्न मानते हैं। भारतीय दार्शनिक बिमल कृष्ण मतिलाल ज्ञानमीमांसा को केन्द्रीय विषय सिद्ध करते हुए इसे दर्शन स्वीकारते हैं और पाश्चात्य दर्शन के समतुल्य मानते हैं, जबकि दया कृष्ण घोषणा करते हैं कि यह दर्शन है क्योंकि इसमें "साम्प्रत्ययिक भ्रम और साम्प्रत्ययिक स्पष्टीकरण है (भ्रम और भ्रम का निराकरण सम्प्रत्यय या अवधारणात्मक रूप है)"। उनके सनुसार, दर्शन सम्प्रत्ययों पर युक्तितः विचार करता है, और भारतीय दर्शन भी वैसा ही करने के कारण दर्शन है।

इस प्रकार, कई विचार इस सम्बन्ध में हैं कि क्यों भारतीय दर्शन दर्शन है। संदर्भ ग्रन्थ सूची से इस सम्बन्ध में विस्तृत अध्ययन किया जा सकता है। इस इकाई में संकेत हेतु यह कह देना भर पर्याप्त है, ताकि कोई भी ऐतिहासिक और लक्षणात्मक वर्णन किया जाये, पर यह भ्रम पैदा न हो जाये कि यही एकमात्र विचार है और सर्वस्वीकार्य है।

बोध प्रश्न 3

ध्यातव्यः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. भारतीय दर्शन में 'जीवन की जिज्ञासा' क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. क्या भारतीय दर्शन निराशावादी और पलायनवादी है? मूल्यांकन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 सारांश

दर्शन की उत्पत्ति दो यूनानी शब्दों से हुई है जिनका अर्थ ज्ञान अथवा विवेक से प्रेम है। भारतीय परम्परा में फिलॉसोफी का अर्थ दर्शन अथवा तत्व है। इस संदर्भ में भारतीय दृष्टिकोण पश्चिमी दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न है। दार्शनिक समस्याओं के संदर्भ में भारतीय तथा पश्चिमी परंपराओं में कोई अन्तर नहीं है। भारतीयों ने एक भिन्न परिपेक्ष्य में ज्ञान को शक्ति माना। बेकन ने बाहरी जगत पर प्राधिकार स्थापित करने के उद्देश्य से ज्ञान को साधन माना। दूसरी ओर भारतीयों ने स्वयं दर्शन को मूल्य माना। अतः भारत में दर्शन को एक जीवन शैली माना गया है। चार्वाक के अकेले अपवाद को छोड़कर भारत में सभी दर्शन पद्धतियों ने किस न किसी अर्थ में मुक्ति को अवश्य स्वीकार किया। मोक्ष इसी प्रकार का आदर्श है। दर्शन धर्म से अलग है। तथापि धर्म दर्शन से स्वतंत्र हो भी सकता है और नहीं भी।

1.6 कुंजी शब्द

यज्ञ : यज्ञ पवित्र अनुष्ठान है जो ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है।

निराशावाद : निराशावाद लैटिन शब्द पेसीमस का हिन्दी रूपान्त्रण है जिसका अर्थ 'सबसे बुरा' होता है। यह मन की वह पीड़ादायक अवस्था है जो जीवन के बोध को विशेषकर भावी घटनाओं को नकारात्मक ढंग से प्रभावित करती है।

1.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

अग्रवाल, एम. एम. नथिंगनेस एंड फ्रीडमः सात्र एंड कृष्णमूर्ति. *जर्नल ऑफ इण्डियन काउंसिल आफ फिलॉस्फीकल रिसर्च,* वोल्यूम IX, नं. 1 (सितंबर–दिसंबर, 1991).

एलीज, के. पी. *दि रिलेवेंस आफ रिलेशन इन शंकर अद्वैत वेदांत.* देल्हीः कांट पब्लिकेशंस, 1996.

चक्रवर्ती, अरिन्दम. "रेशनल्टी इन इण्डियन फिलॉसोफी." इन *अ कम्पेनियन टू वर्ल्ड फिलॉसोफीज.* एडिटिड बाई इलियट डस्च एण्ड रॉन बोन्टेक. 259–278. ऑक्सफोर्डः ब्लेकवेल, 1999.

चट्टोपाध्याय, देबीप्रसाद. *इण्डियन फिलॉसोफीः अ पॉपुलर इन्ट्रोक्शन.* न्यू देल्हीः पीपल्स पब्लिशिंग हाउस, 1964.

चड्ढा, मोनिमा. "पर्सेप्चुअल कॉगनीशनः ए न्याय–कांटियन अप्रोच", *फिलॉसोफी ईस्ट एंड वैस्ट.* वोल्यूम 51 नं 2 (अप्रैल 2001).

थचिल, जे. *एन इनिशियेशन टू इण्डियन फिलॉसोफी.* अल्वेयः पॉन्टिफिकल इन्स्टिट्यूट ऑफ फिलॉसोफी एण्ड थ्योलॉजी, 2000.

दया कृष्ण. *इण्डियन फिलॉसोफीः अ काउन्टर पर्स्पेक्टिव.* न्यू देल्हीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1991.

दया कृष्ण. *कन्टरेरी थिंकिंगः कलेक्टिड एस्सेज ऑफ दया कृष्ण.* एडिटिड बाई नलिनि भूषण, जे एल गारफील्ड एण्ड अदर्स. न्यू यॉर्कः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011.

नटराजन, कांचना. "प्राइमोर्डियल याटर्सः सम रिमार्क्स ऑन ऋग्वैदिक क्रियेशन हिम्स". *जेआईसीपीआर,* 17/2(2001): 147–168.

पप्पु, एसेस रामा राव एण्ड आर. पुलिगन्डल (एडि.). *इण्डियन फिलॉसोफीः पास्ट एण्ड फ्यूचर.* देल्हीः मोतीलाल बनारसीदास, 1982.

बालासुब्रमणियम, आर. *दि मेटाफिजिक्स ऑफ दि स्प्रिट.* न्यू देल्हीः इण्डियन काउंसिल ऑफ *फिलॉस्फीकल* रिसर्च, 1994.

बागची, कल्याण कुमार, 'आनटोलॉजिकल आरगूमेंट एण्ड ऑन्टोलॉजी आफ फ्रीडम', *जर्नल ऑफ इण्डियन काउंसिल ऑफ फिलॉस्फीकल रिसर्च,* वोल्यूम X, नं. 1 (सितम्बर–दिसम्बर 1992).

बारलिंगे, सुरेन्द्र एस. *रिउन्डरस्टेन्डिंग इण्डियन फिलॉसफी.* देल्हीः डी. के. प्रिंटवर्ल्ड, 1998.

ब्राउन जेसन डब्ल्यू. "माइक्रोजिनेसिस एंड बुद्धिज्म दि कंसेप्ट ऑफ मोमेंट्रीनेस". *फिलॉसोफी ईस्ट एंड वेस्ट,* वोल्यूम 49, नं. 3 (जुलाई, 1999).

भारत ठाकुर, जे.के. 'ए जनी टुयर्ड्स एसेंस आफ मांडुक्य' ; उपनिषद फार ए थ्योरी आफ टाइम', *इंडियन फिलॉस्फीकल क्वाटर्ली.* वोल्यूम XXV, नं. 2 (जनवरी, 1998).

भारत ठाकुर, जे.के. 'ए थ्योरी आफ टाइम' ; इंडियन फिलास्फीकल क्वाटर्ली, वोल्यूम XXII, नं. 4 (अक्टूबर, 1995). *इंडियन फिलॉस्फीकल क्वाटर्ली.* वोल्यूम, XXIV, नं. 2 (अप्रैल, 1997).

मिश्रा, गणेश्वर. "स्कॉप एण्ड लिमिट्स् ऑफ श्रुति एज प्रमाणः पर्स्पेक्टिव फ्रोम पूर्व मीमांसा एण्ड अद्वैत वेदान्त", इन *शब्दप्रमाण इन इण्डियन फिलॉसोफी.* एडिटिड बाई मंजुलिका घोष एण्ड भास्वति भट्टाचार्य चक्रबर्ती, 108–117. देल्हीः नॉर्थन बुक सेन्टर, 2006.

राधाकृष्णन्, एस. *इण्डियन फिलॉसोफी.* वोल्यूम 1, न्यू देल्हीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1977.

रामानुजन, ए के. "इज देयर एन इण्डियन वे ऑफ थिंकिंग? एन इन्फॉर्मल एस्से." *कन्ट्रीब्यूशन्स ऑफ इण्डियन सॉशियोलोजी,* 23/1(1989): 41–58.

हिरियण्णा एम. *आउटलाइन्स ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी.* लंदनः अनविन पब्लिशर्स, 1973.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

उपाध्याय, बलदेव. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा.* वाराणसीः चौखम्बा ओरियन्टालिया, 1979.

चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद. *भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत.* अनुवाद– कन्हैया. नई दिल्लीः पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 2007.

धर्मराजाध्वरीन्द्र. *वेदान्तपरिभाषा.* हिन्दी व्याख्याकार– गजानन शास्त्री मुसलगांवकर. वाराणसीः चौखम्बा विद्याभवन, 2010.

दयाकृष्ण. *भारतीय चिंतन परंपराएँः नए आयाम, नई दिशाएँ.* सम्पादक– कृष्णदत्त पालीवाल. दिल्लीः सस्ता साहित्य मण्डल, 2013.

दयाकृष्ण. *भारतीय दर्शनः एक नई दृष्टि.* जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स, 2000.

दासगुप्त, सुरेन्द्र नाथ. *भारतीय दर्शन का इतिहास* (पांच भाग). अनुवाद– कलानाथ शास्त्री एवं सुधीर कुमार. जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1977.

द्रविड, नारायण शास्त्री. *भारतीय दर्शन की मूलगामी समस्यायें.* सागरः विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2009.

बच्चुलाल. *भारतीय दर्शन बृहत्कोष* (पंचम, षष्ठम, सप्तम भाग). दिल्लीः शारदा पब्लिशिंग हाउस, 2012.

बच्चुलाल. *भारतीय दर्शन बृहत्कोष* (प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ भाग). दिल्लीः षारदा पब्लिशिंग हाउस, 2004.

राधाकृष्णन, एस. *भारतीय दर्शन* (दो खण्ड). अनुवाद– नन्दकिशोर गोभिल. दिल्लीः राजपाल एण्ड सन्स, 2015.

शल्य, यशदेव एवं भगवती. *प्रमुख भारतीय और पाश्चात्य दर्शन–धाराएं.* जयपुरः दर्शन प्रतिष्ठान, 1997.

शर्मा, चन्द्रधर. *भारतीय दर्शन का आलोचनात्मक सर्वेक्षण.* दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 2005.

शास्त्री, धर्मेन्द्रनाथ. *भारतीय दर्शन शास्त्र.* बनारसः मोतीलाल बनारसीदास, 1953.

हिरियण्णा, एम. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा.* हिन्दी अनुवाद– गोवर्धन भट्ट आदि. दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1969.

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. 'दर्शन' शब्द तत्य अर्थात् परम सत् से उत्पन्न हुआ है। यह परम सत् ही ज्ञाता है। यह न केवल तात्विक घटक की बल्कि ज्ञान–मीमांसात्मक घटक की भी व्याख्या करता है। तथापि दर्शन की व्याख्या करने में दोनों घटकों की सामूहिक रूप से जरूरत होती है। ज्ञानमीमांसात्मक घटक भी अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह परम सत् के ज्ञान के लिये आवश्यक है। आरंभिक अवस्था में सत् और ज्ञाता विषय के बीच कोई अंतर नहीं था। अतः ज्ञानमीमांसात्मक रूप से ज्ञान आंतरिक हो गया। कालान्तर में मानव ने अपने आप को मूल्यों से जोड़ा और स्वयं की सत् के साथ तादात्यमता स्थापित की। अतः भारतीय संदर्भ में, मूल्य को न केवल दर्शन की विषय सामग्री माना जाता है बल्कि दर्शन को स्वयं एक मूल्य समझा जाता है।

2. भारतीय संदर्भ में फिलॉसोफी को दर्शन कहा जाता है अर्थात् देखना अथवा अनुभूति करना। यह अनुभूति ज्ञान की अनुभूति से मेल खाती है। जब हम कहते हैं कि हमें किसी वस्तु की अनुभूति हैं तो कहने का अर्थ होता है कि हमें कोई न कोई ज्ञान हो रहा है। यह सादृश्य सम्बन्ध एकैक होता है और यह एकैक लगभग समरूपी होता है। तत्य का अर्थ 'तत्' और 'त्य' दो शब्दों से हैं। इस शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ 'तुम यही हो'। यह मुख्यरूप से भारतीय दर्शन में परम सत् को प्रदर्शित करता है। दर्शन शब्द का अर्थ परम सत् से है और इस प्रकार यह परम सत् ज्ञाता हो जाता है जिसमें तात्विक और ज्ञान मीमांसात्मक घटक सम्मिलित हैं तथ यह भारतीय संदर्भ में दर्शन के विवरण को संतोष जनक ढंग से स्पष्ट करता है।

बोध प्रश्न 2

1. उत्तर–जागरण काल में बेकल ने 'ज्ञान ही शक्ति है' सूक्ति का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत ने विज्ञान के विकास की मूल दिशा को सदा के लिए बदल दिया। परंतु प्राचीन भारतीयों ने इस सूक्ति को नहीं माना। इसके विपरीत उन्होंने व्यावहारिक लक्ष्यों की सिद्धि के लिए यज्ञ और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करने के लिए यज्ञ किए। परंतु कठोर अर्थ में भारतीयों ने भी ज्ञान को शक्ति माना क्योंकि उनके लिए ज्ञान जीवन पद्धति था अतः उनके लिए ज्ञान कभी स्वयं में मूल्ययान नहीं था। तथापि, शब्द 'शक्ति' के अर्थ का अवलोकन करना भी जरूरी है। बेकन के दर्शन में 'शक्ति' प्रकृति पर नियंत्रण करने के लिए आवश्यक थी परंतु भारतीय सन्दर्भ में शक्ति प्रकृति के समक्ष स्वयं को समर्पित करने का साधन थी। यही यह प्रमुख सिद्धांत है जो प्रारंभिक वैदिक विचारधारा की आधारशिला है। 'शक्ति' शब्द के अर्थ में मूल परिवर्तन उस विश्वदृष्टिकोण को भी स्पष्ट करता है जिसे आसानी से तब पहचाना जा सकता है जब भारतीयों और यूरोपवासियों की विश्वास पद्धतियों और मनोवृत्तियों की आपस में तुलना की जाती है और फिर उनमें अंतर किया जाता है।

2. भारतीय दर्शन के चारों ओर छाए धुंधलके को एक सामान्यानुमान के द्वारा दूर किया जा सकता है। पश्चिमी दर्शन इसाई दर्शन और यहूदी दर्शन में विभाजित नहीं है तथापि सभी पश्चिमी दार्शनिक (यूनानी दार्शनिकों को छोड़कर) ढीले अर्थ में या तो इसाई हैं अथवा यहूदी। ठीक इसी प्रकार से, 'हिन्दू दर्शन' को धर्म के अर्थ में समझना अत्याधिक अनुचित है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ना चाहिए कि

अधिकतर भारतीय दार्शनिक 'प्रतिबद्ध' हिंदू थे। यह सच है कि भारत में दार्शनिक (जैसे कि रामानुज और माधव) धार्मिक समूहों अथवा संप्रदायों के संस्थापक बन गए थे। परंतु ठीक इसी प्रकार पश्चिम में सेंट आगस्टीन, सेंट एक्यानस आदि भी थे। जबकि कोई भी उनके दर्शन को इसाई दर्शन नहीं कहता। फिर भी निश्चित रूप से भारतीय परम्परा में बौद्ध और जैन दर्शन शुद्ध दर्शन हैं क्योंकि कड़े शब्दों में कहें तो न तो बौद्ध धर्म और न ही जैन धर्म कोई धर्म है। यहां पर एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि बौद्ध दर्शन है तो हिंदु दर्शन क्यों नहीं है? इस प्रकार के दर्शन की बात करना घोड़े के आगे गाड़ी रखना है। भारत में दर्शन की उत्पत्ति सनातन धर्म, प्रसिद्ध रूप में कहें तो हिंदू धर्म, से नहीं हुई है बल्कि इसका उलट सत्य है।

बोध प्रश्न 3

1. भारतीय दर्शन में जीवन की जिज्ञासा का समाधान खोजना आसान है। किन्तु, पाश्चात्य परम्परा में इसके समान समाधान खोजना आसान नहीं है (यह सत्य है कि अस्तित्ववाद ने इस तरह का प्रयास किया है, परन्तु यह अकेले द्वीप की तरह रहा और विश्लेषणात्मक दर्शन परम्परा ने इसे बाधित करने का प्रयास किया)। भारतीय परम्परा के अनुसार जीवन का लक्ष्य दुःख से आनन्द (या सुख) की ओर रास्ता बनाना है। यह वह एकमात्र ताना है जिससे सम्पूर्ण भारतीय दर्शन गुंथा हुआ है। एक समय, भारतीय दर्शन परम्परा में ऊर्ध्वाधर विभाजन हुआ जिससे आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों अस्तित्व में आये। किन्तु, ये जीवन के लक्ष्य के मुद्दे पर मिल जाते हैं। उनके मध्य विवाद उन्हें एकसमान लक्ष्य दुःख से सुख की ओर बढ़ने से नहीं रोक पाते हैं।

2. इस आलोचना के दो आधार हैं। पहला, गलत ढंग से दुख से पलायन की इच्छा को बाह्य जगत से पलायन की इच्छा के रूप में समझा गया। दूसरा, भारतीय दर्शन भौतिक सुखों का समर्थन नहीं करता। आइए हम दूसरे पर विचार करत हैं। भौतिक सुखों के खण्डन का अर्थ परम आनन्द का खण्डन नहीं है क्योंकि आनन्द और सुख प्रत्यक्षरूप से अलग–अलग है। मोक्ष केवल आनन्द का संस्कृत रूप है। सुख न केवल क्षणिक है बल्कि यह इस अर्थ में शुद्ध नहीं है कि सुख सदैव दुख को लेकर आता है। यदि हम बैंथम के मानदंडों को माने तो ये मानदंड सुख को नहीं बल्कि आनन्द को सन्तुष्ट करते हैं। वास्तव में सुख की नहीं बल्कि आनन्द की पहचान हैं। शायद केवल निकटता ही सुख को संतुष्ट करती है। यदि ऐसा है तो व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी यदि कोई दर्शन मोक्ष से आदर्श मानता है तो भी उसे निराशावादी नहीं कहा जा सकता।

   भौतिक संसार से पलायन की इच्छा होना पलायनवादी मनोस्थिति को प्रदर्शित करती है। पुनर्जन्म केवल एक ऐसा मिथक हो सकता है जिसका सत्यापन सम्भव न हो। परंतु इस संसार में पुनर्जन्म की घटनाएं पायी जाती हैं। यदि मोक्ष की प्राप्ति किसी व्यक्ति के जीवन काल के दौरान ही सम्भव हो (जिसे जीवन मुक्ति कहा जाता है), तो भौतिक संसार को बुरा मानने और उसे त्याज्य मानने का कोई कारण नहीं है। तथापि इसके बाद भी न केवल भारतीय दर्शन के आलोचकों बल्कि समर्थकों ने भी मोक्ष की अवधारणा को गलत ढंग से समझा और इसी गलत समझ ने बाहरी संसार को मूलरूप से बुरा एवं त्याज्य मानने की गलती को जन्म दिया।

इकाई 2 भारतीय ग्रंथ[2]

रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 परिचय

2.2 स्मृति की विषय वस्तु

2.3 पुराण

2.4 वेदांग

2.5 महाकाव्य

2.6 सारांश

2.7 कुंजी शब्द

2.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में, आप भारतीय संस्कृति के स्रोतों का परिचय प्राप्त करेंगे। तथापि अध्ययन सामग्री में वेदों (जिन्हें श्रुति भी कहा जाता है) जैसे प्रमुख ग्रंथ, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के स्रोत सम्मिलित नहीं हैं क्योंकि इन स्रोतों का उल्लेख अन्य इकाईयों में किया गया है। इस इकाई में निम्नलिखित शामिल हैं:

- स्मृति
- पुराण
- वेदांग और
- महाकाव्य
- चूंकि ये सभी दर्शन से गूढ़ अर्थों में नहीं जुड़े हैं, इसलिए इनका केवल सरसरी अवलोकन करना ही पर्याप्त होगा।

2.1 परिचय

स्मृति शब्द का अर्थ है ''जो स्मरण अथवा स्मृति में है''। ये ग्रंथ जिन्हें स्मृति कहा जाता है, प्रारंभिक अवस्था में लिखित रूप में प्रकट हुए। स्मृति के युग ने वेदों के युग का अनुसरण किया। चूंकि वैदिक काल का विस्तार अनेक शताब्दियों तक रहा है इसलिए यह

[2] प्रो. एम आर नन्दन, दर्शन विभाग, शासकीय महिला महाविद्यालय, मान्डया, अनुवाद– श्री प्रवेश कुमार, दिल्ली

भी संभावना है कि *स्मृति* वेदों के समापन काल के दौरान प्रकट हुई हों। परिणामस्वरूप, सभी स्मृतिकारों ने दावा किया कि उनकी रचनाएं वेदों के अनुरूप हैं इसलिए उनकी रचनाएं वेदों के स्पष्टीकरण के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। यद्यपि, हम स्मृतियों में वेदों से पर्याप्त अंतर आसानी से देख सकते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रकार के विचलनों को वेदों से समर्थन प्राप्त नहीं है।

2.2 स्मृति की विषय–वस्तु

स्मृति को धर्मशास्त्र भी कहा जाता है जिसका अर्थ आचार–संहिता होता है। आचार–संहिता के तीन भाग हैं, अनुष्ठान अथवा कर्मकांड, सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह और पापों, जिनमें अपराध भी सम्मिलित है, का प्रयाश्चित। मुख्य बात यह है कि इनमें किसी भी प्रकार के मौलिक अधिकारों अथवा किसी अन्य प्रकार के अधिकारों का उल्लेख नहीं है। इनमें केवल 'विधि और निषेध' पर बल दिया जाता है। आचार–संहिता 'संविधान' के समरूप है। यह कुछ ऐसा है जैसे कि आजकल की सरकारों द्वारा बनाई गई दंड संहिता है। इस प्रकार स्मृति जीवन के दो पक्षों पर बल देती है: 'धार्मिक' और 'सामाजिक'। धार्मिक पक्ष का अस्तित्व सामाजिक पक्ष के बिना नहीं हो सकता। धार्मिक अनुष्ठान की भूमिका व्यक्तिगत जीवन तक सीमित होती है। संक्षेप में कहें तो सिर्फ घरेलू कार्यों तक। इन सभी आयामों से मिलकर 'धर्मशास्त्र' निर्मित होता है। हालांकि दावा किया जाता है कि प्राचीन काल में अनेकों स्मृतियाँ थीं। तथापि इतिहास में केवल कुछ ही स्मृतियों का उल्लेख मिलता है। इनमें से केवल तीन प्रसिद्ध हैं। तीन व्यक्तियों, मनु, याज्ञवल्क्य और पराशर, द्वारा विधि और निषेध संहिताबद्ध किए गए तथा फलस्वरूप उनके नामों पर स्मृतियों के नाम पड़े। इन स्मृतियों का सरसरी उल्लेख करना भर पर्याप्त है।

स्मृति का एक महत्वपूर्ण पहलू इसकी नैतिक कठोरता है। कर्तव्यों का निर्धारण और कर्तव्य विशेष के फलन पर विशेष बल कुछ सीमा तक इन्हें संविधान में निर्धारित नीति निर्देशक सिद्धांतों के समान बनाता है। इसमें प्रस्तुत समाज का चारवर्गीय विभाजन एक प्रकार है तथा व्यक्ति के जीवनकाल का चार वर्गों में विभाजन दूसरे अन्य प्रकार विभाजन है। स्मृति न केवल चार वर्गों के बारे में बल्कि व्यक्ति की चार अवस्थाओं ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास के बारे में भी अत्यंत स्पष्ट है। इस व्यवस्था में एक अवस्था से दूसरी अवस्था में मनमाने ढंग से जाने की कोई गुंजाइश नहीं है। अंतिम विभाजन अर्थात् पापों का प्रयाश्चित वास्तव में इस प्रकार के निषिद्ध वर्ग परिवर्तन से संबंधित है। इस प्रकार की निषेधता के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत स्वतंत्रता के ऊपर समाज में स्थायित्व को प्राथमिकता दी गई है। यह हमें स्मृति द्वारा समर्पित राजनीति की व्यवस्था के बारे में जानकारी प्रदान करता है। निश्चित रूप से स्मृति ने लोकतांत्रिक प्रणाली का समर्थन नहीं किया, यद्यपि वैदिक युग में लोकतांत्रिक प्रणाली खूब फली–फूली थी।

2.3 पुराण

यह दावा किया जाता है कि भारत में पुराण और इतिहास अपृथक हैं। संस्कृत में माइथॉलॉजी के लिए 'पुराण' शब्द का प्रयोग होता है। इस शब्द के सूक्ष्म अन्तर के साथ दो अलग व्युत्पत्तिपूलक अर्थ होते हैं। एक है; पुरा (भूत), अतीतम् (बीता हुआ), अनागतम्

(घटित होने वाला) जबकि पुरा (भूत), भवम् (घटित हो चुका) दूसरा अर्थ है। संरचना अर्थात् विन्यास के अनुसार पुराण के पांच घटक हैं। इनका उल्लेख नीचे किया गया है:

1) राष्ट्र अथवा राष्ट्रों का विवरण और उनका इतिहास

2) सृजन का इतिहास

3) पुनर्सृजन का इतिहास

4) राजवंशो का विवरण

5) प्रत्येक मनु (मनवन्तर) की कथा

पहले और चौथे घटकों में इतिहास के तत्व सम्मिलित हैं। तथापि, पुराण एवं इतिहास में चूंकि इतिहास एक निश्चित पद्धति का अनुसरण करता है एवं उसी के अनुसार जितना सम्भव हो सकता है उतने ही प्रमाण (तथ्य नहीं) एकत्र करने का प्रयास करता है इसलिए इतिहासकार के दावों पर कभी भी विवाद खड़ा किया जा सकता है। पुराण पूरी तरह से अलग हैं। प्रमाणों (साक्ष्यों) की प्रासंगिकता पुराणों के लिए बिल्कुल प्रतिकूल है। अतः पुराणों के दावों का न तो खण्डन करना सम्भव है और न ही समर्थन।

पुराणों की संख्या अठारह है। चूंकि ये दार्शनिक रूप से अप्रासंगिक हैं, इसलिए इनका उल्लेख करना भी आवश्यक नहीं है। पहले बताए गए पांच घटकों के अतिरिक्त, अनेक पुराण ब्रह्माण्ड विज्ञान से सम्बन्धित है। संभवतया यह एकमात्र विषय है जो दर्शन और पुराणों में समान रूप से पाया जाता है। रोचक बात यह है कि वायु पुराण में भूगोल, संगीत आदि का भी वर्णन करने का प्रयास किया गया है। प्रमाणों की उपेक्षा के अतिरिक्त, पुराणों में एक और त्रुटि है, सभी पुराण, देवताओं और राक्षसों, मृत्यु के पश्चात जीवन आदि से सम्बन्धित किंवदन्तियों को प्रस्तुत करते हैं जो उन्हें गंभीर दार्शनिक अध्ययन के क्षेत्र से बाहर कर देती है।

पुराणों के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि यद्यपि पुराण प्रमुख रूप से धर्म शास्त्रीय मुद्दों से जुड़े हुए हैं फिर भी उनमें जीवन की लगभग सभी गतिविधियां सम्मिलित हैं। अतः पुराणों का अध्ययन सामग्री में महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिए। परंतु, यह सम्पूर्ण समावेशन अपने आप में एक गंभीर त्रुटि है।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्य : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. स्मृति की कठोरता की संक्षेप में चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2. पुराणों के अर्थ को संक्षेप में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 वेदांग

वेदांगों को षडांग भी कहा जाता है जिसका अर्थ छह अंग होता है। इन छह अंगों का कार्य वेदों के विचारों की जटिलता को स्पष्ट करना है। ये छह अंग शिक्षा (स्वर विज्ञान–Phonetics), व्याकरण (अर्थात् वैदिक व्याकरण), छंद, निरूक्त (व्युत्पत्ति विज्ञान एवं शब्दकोश) ज्योतिष और कल्प (कर्मकांड) हैं।

ऐसा विश्वास है कि वैदिक ग्रंथों को भली–भांति समझने के लिये इन सभी अंगों का सही एवं स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। वेदों की दो असाधारण विशेषताएं इन अंगों की पृष्ठभूमि की रचना करती है। पहला, वेदों के अपौरुषेय (मानव से स्वतंत्र) होने के कारण इनमें किसी भी रूप में किसी भी कारण से किसी भी प्रकार के परिवर्तन की अनुमति नहीं थी। दूसरे, यह भी मान्यता थी कि वेदों को केवल मौखिक रूप से पढ़ाया और याद किया जाए। जिसके फलस्वरूप भारतीयों को वेदों को लिखने में अनेक शताब्दियां लग गईं। यहां इस विशेष दिशा–निर्देश के गुण–दोषों की विवेचना किए बिना हम केवल वैदिक परंपरा का संरक्षण करने में वेदांगों द्वारा निभाई गई भूमिका की जांच पड़ताल करेंगे।

शिक्षा

ऋग्वेद भाष्य में सायण ने शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है, "यह जो स्वर और वर्ण के अनुसार उच्चारण का शिक्षण प्रदान करती है, शिक्षा कहलाती है"। वाणी में स्पष्टता और ठीक–ठीक सुनने की योग्यता वेदों को सीखने की पहली शर्त होती है। यही कारण है कि वेदों को अनुश्रव (जिसके लिए श्रवण–अर्थात सुनने की आवश्यकता होती है) कहते हैं। स्पष्ट उच्चारण की अनिवार्यता पर बल इसलिए दिया जाता है क्योंकि वैदिक भाषा, जो बहुत भिन्न व्याकरण द्वारा निर्मित संस्कृत भाषा का सर्वाधिक प्राचीन रूप है, की अद्भुत संरचना के कारण इसके उच्चारण में परिवर्तन भी इसके अर्थ को पूर्णरूप से बदल सकता है।

व्याकरण, छंद और निरूक्त

ये तीन अंग अपने द्वारा वैदिक भाषा के सम्बन्ध में निभाई गई उस भूमिका के चलते, जो कि किसी अन्य भाषा के लिए उसके व्याकरण या शब्द कोश के द्वारा निभाई गई भूमिका के ठीक समान है, विशेष नहीं हैं। चूंकि कोई भी भाषा व्याकरण के बिना संभव नहीं है, इसलिए वैदिक व्याकरण उतनी ही पुरानी होनी चाहिए जितने पुराने वेद हैं। यदि वेद अपौरुषेय हैं तब वैदिक व्याकरण भी अपौरुषेय होनी चाहिए। तथापि, ऐसा नहीं है। व्याकरण की वर्तमान

रचनाओं में, पाणिनी की रचना अष्टाध्यायी सबसे प्राचीन रचना है। ऐसा कहा जाता है कि यह चौथी शताब्दी की रचना है। तथापि, प्राचीन वैदिक शब्दकोश अन्य व्याकरणों का भी उल्लेख करते हैं। अब चूंकि शब्दकोश पाणिनी की रचना की अपेक्षा अधिक प्राचीन है, इसलिए यह स्पष्ट है कि अन्य व्याकरण रचनाएं पाणिनी के व्याकरण से अधिक प्राचीन हैं। इन पहलुओं के उल्लेख से पता चलता है कि व्याकरण पौरुषेय है। अतः भाषा भी पौरुषेय होनी चाहिए। तथापि, शकटयान के अनुसार व्याकरण भी अपौरुषेय है। शकटयान के अनुसार व्याकरण पर सबसे प्राचीन रचना इंद्र व्याकरण है। इसका यह नाम इसलिए पड़ा क्योंकि एक अनुश्रुति के अनुसार मनुष्य ने इसे इन्द्र से प्राप्त किया था।

छंद का स्रोत किसी पिंगलाचार्य द्वारा रचित 'छंदसूत्र' है। वास्तव में इस लेखक के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। इस रचना में वैदिक और अवैदिक दोनों छंद सम्मिलित हैं। सामान्यतौर पर संहिताएं निश्चित छंद से बंधी हुई हैं। केवल *कृष्ण–यजुर्वेद* और *अथर्ववेद* संहिताएं कहीं–कहीं पद्यात्मक हैं। इस प्रकार, छंद वेदों के अध्ययन में प्रमुख भूमिका निभाता है। पाणिनी का कहना है कि, 'छंदः पदौ तु वेदस्य' जिसका अर्थ है; छंद ही वेदों का मूल आधार है। समय के साथ–साथ वैदिक भाषा स्वयं छंद हो गई। वैदिक छंद में एक अद्भुत विशेषता है जिसका उल्लेख कात्यायन ने किया है। उनका कहना है, 'यत् अक्षरः परिमाणम् तत् छंदः'। इसका अर्थ है कि जो अक्षरों (वर्णों) की संख्या (अथवा परिमाण) निर्धारित करता है वही छंद है। यह ध्यान रखना चाहिए कि लौकिक संस्कृत के सन्दर्भ में यह सत्य नहीं है। ऐसा माना जाता है कि लौकिक संस्कृत की उत्पत्ति वैदिक छंद से हुई।

वैदिक छंद की रचना पद अथवा चतुष्क से हुई है। साधारण तौर पर माना जाता है कि एक चतुष्क में चार वर्ण होते हैं। शायद, बाद में यह एक विशेषता बन गई क्योंकि ग्यारह प्रधान छंद होते हैं जो न केवल चतुष्कों की संख्या में अलग–अलग हैं। बल्कि प्रत्येक चतुष्क में वर्णों की संख्या में भी अलग–अलग हैं। जहां त्रिष्टुप छंदों में चार चतुष्क होते हैं और प्रत्येक चतुष्क में ग्यारह वर्ण (अक्षर) होते हैं। एक छंद दूसरे छंद से चतुष्कों के विन्यास के आधार पर भिन्न हो सकता है। उदाहरण के लिए, काकुप छंदों में पहले और तीसरे चतुष्कों में आठ अक्षर तथा दूसरे में बारह अक्षर होते हैं। इस अंतर से पता चलता है कि इसमें बहुत कम स्वतंत्रता है जो अन्यत्र इसकी अनुपस्थिति (न दिखाई देने) से स्पष्ट है।

निरुक्त वैदिक शब्दों का अर्थ प्रदान करते हैं। प्रथम सोपान में शब्दों को एकत्र किया गया जिनसे शब्दकोश का निर्माण हुआ। केवल पर्याय और शाब्दिक अर्थ शब्दों के संकलन करने के मूल उद्देश्य को निष्फल करते हैं। निरूक्त केवल इस प्रकार का अर्थ प्रदान नहीं करता है। यह व्याख्याएं उपलब्ध कराता है। अतः यह किसी साधारण शब्दकोश से कहीं ज्यादा है।

आइए, शब्दकोश की संरचना से आरम्भ करें, यास्क नामक कोशकार ने इन शब्दों का संग्रह किया और सर्वाधिक प्रमाणिक व्याख्या प्रस्तुत की। शब्दकोश में कुल 1770 शब्द हैं जो तीन काण्डों में विभाजित हैं। प्रथम कांड में तीन अध्याय हैं जिन्हें निघण्टु कहा गया है। दूसरे और तीसरे काण्ड में एक–एक अध्याय है जिन्हें 'नैगम और दैवत्य' कहा गया है। निरुक्त मुख्यरूप से इन शब्दों की व्याख्या है और कुछ सीमा तक उन्होंने (यास्क ने) कुछ मंत्र उद्ध त किये हैं और उनकी व्याख्या की है। स्वयं निरूक्त में चौदह अध्याय हैं जिनमें से प्रथम छह अध्याय निघण्टुक काण्ड और नैगम काण्ड से संबंधित है और अगले छह अध्याय दैवत् काण्ड से संबंधित हैं। अंतिम दो अध्याय कुछ–कुछ परिशिष्टों की तरह है।

ज्योतिष

प्राचीन भारत में ज्योतिष की उत्पत्ति आवश्यकता के आधार पर हुई। यज्ञ किसी भी व्यक्ति के विवेकानुसार नहीं किए जा सकते थे। कठोर शब्दों में कहे तो यज्ञ ऋतु अनुसार किये जाते थे। प्रत्येक वर्ण (शूद्र को छोड़कर) के लिए यज्ञ करने की ऋतु निर्धारित थी। तैतरीय ब्राह्मण में मिलता है 'वसंते ब्राह्मणः (बसंत ऋतु में ब्राह्मण) अग्निमादधीत (पवित्र अग्नि जलाओ), ग्रीष्मे राजन्यः (ग्रीष्म ऋतु में क्षत्रिय) अग्निमादधीत, शरदे वैश्यः (वर्षा ऋतु के पश्चात वैश्य) अग्निमादधीत। पवित्र अग्नि प्रज्जवलित करना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि केवल इससे ही कोई भी कार्यक्रम आरम्भ होना चाहिए। यज्ञ के प्रसंग में न केवल ऋतु बल्कि यज्ञ आरंभ करने का सही और निश्चित समय भी महत्वपूर्ण होता था इसलिए सूर्य की गति के साथ–साथ खगोलीय पिंडो की गति एवं स्थिति को जानना भी आवश्यक था। यह केवल ज्योतिष के पर्याप्त ज्ञान के माध्यम से ही किया जा सकता था।

कल्प सूत्र

कल्प सूत्रों को कल्प सूत्र इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनके द्वारा उपलब्ध सभी सामग्री सूत्रों के रूप में है। कल्पसूत्र की व्याख्या वैसी ही है जैसी ब्रह्म सूत्र की; अल्पाक्षरम् (संक्षिप्त), असंदिग्धम् (स्पष्ट अथवा निर्विवाद), सारवत् (सार में परिपूर्ण), विश्वतो मुखम् (सबको अपने आप में समाहित करने वाला)। कल्प सूत्र का शाब्दिक अर्थ कर्म अर्थात् क्रिया–प्रदर्शित सूत्र है। कर्म चार प्रकार से भिन्न है। अतः इस पर अंत में विचार करेंगे। पहले तीन *ऋक्, यजुर्* और *साम* सभी के लिए सामान्य हैं। परंतु जहां तक विधियों का संबंध है तीनों कल्प सूत्र प्रत्येक वेद में भिन्न–भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, *ऋग्वेद* के *आश्वलायन* और *सांखायन सूत्र* में सभी तीनों कल्प सूत्र सम्मिलित हैं। चूंकि सूत्र की प्रत्येक श्रेणी में भिन्न–भिन्न आदेश हैं, इसलिए इनसे अनुष्ठानों का निर्माण होता है। आइए, प्रत्येक कल्प पर अलग से विचार करें और तालिका का प्रयोग करते हुए सदस्यता निरूपित करें।

तालिका क

श्रौत सूत्र

आश्वलायन	ऋग्वेद
सांखायन	
कात्यायन	शुक्ल यजुर्वेद
बौधायन	
आपस्तम्ब	
सत्याषाढ़	
वैखानस	कृष्ण यजुर्वेद
भारद्वाज	
मानव	
आरशेय	सामवेद
वैतान	अथर्ववेद

तालिका ख
गृह्य सूत्र

आश्वलायन	
सांखायन	ऋग्वेद
परस्कार	शुक्ल यजुर्वेद
भारद्वाज	
आपस्तम्ब	कृष्ण यजुर्वेद
बौधायन	
गोभिल	
खदिर	सामवेद
जैमिनी	
कौशिक	अथर्ववेद

तालिका ग
धर्म सूत्र

वशिष्ठ	ऋग्वेद
बौधायन	कृष्ण यजुर्वेद
आपस्तम्ब	
गौतम	सामवेद

शुक्ल यजुर्वेद और अथर्ववेद से संबंधित धर्म सूत्र मौजूद नहीं हैं।

आइये देखें कि ये सूत्र किसके बारे में है। आश्वलायन सूत्र आश्वलायन द्वारा स्थापित किया गया। आश्वलायन शौनक का शिष्य था। इसी प्रकार ऐसे अनेक सूत्र हैं जिनका नाम उनके संस्थापकों के बाद उसी तरह पड़ा जिस प्रकार न्यूटन जैसे वैज्ञानिकों के बाद विज्ञान में अनेक नियमों और सिद्धांतों का नाम उनके नाम पर पड़ा जैसे न्यूटन के गति के नियम आदि। सभी श्रौत सूत्र उन विधियों का उल्लेख करते हैं जिनके अनुसार यज्ञ किए जाने चाहिए। ये मुख्यतः आदेशात्मक है और किसी भी प्रकार के विचलन को स्वीकार नहीं करते। मूल तथ्य यह है कि ऐसे अनेक श्रौत सूत्र हैं जो विभिन्न वेदों का समर्थन करते हैं और संकेत करते हैं कि यज्ञ अनेकों ढंगों से किये जा सकते थे।

यहां दो पहलुओं का उल्लेख करना उचित रहेगा। यज्ञ केवल सांसारिक लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से किए जाते थे। दूसरे, पुरुष पत्नी की अनुपस्थिति में यज्ञ नहीं कर सकते थे। इसका अर्थ है कि पत्नी की समाज में स्थिति पति से अधिक न सही किन्तु समान अवश्य थी।

गृह्य सूत्र, गृहस्थ के कर्तव्यों को बताते हैं सभी गृह्य सूत्र इस बात पर सहमत हैं कि क्या करना चाहिए। परंतु ये अन्य बातों जैसे कि किस प्रकार करना चाहिए पर एक दूसरे से अलग है। उदाहरण के लिए विवाह की प्रासंगिकता को लेकर कोई भी गृह्य सूत्र असहमत नहीं है। परंतु ये विवाह किए जाने के ढंगों पर एकमत नहीं हैं। दूसरे, सभी चार सूत्र एक–दूसरे के अनुपूरक हैं। अतः उनमें न तो कोई विकल्प है और न ही कोई परस्पर

विरोध। निष्कर्ष रूप में व्यक्ति को अपना उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए सूत्रों द्वारा बताए गए ढंग से सभी अनुष्ठान करने चाहिए।

गृह्य सूत्र से संबंधित अनुष्ठान दो प्रकार के हैं। पहले प्रकार के अनुष्ठानों (कुछ मामलों में अपवादों को छोड़कर) को जीवन में केवल एक बार किया जाना चाहिए। दूसरे प्रकार के अनुष्ठान प्रतिदिन या वर्ष में एक बार करने चाहिए। ऐसे सोलह उत्तरदायित्व हैं जिन्हें षोडश संस्कार कहा जाता है। इन संस्कारों की चार श्रेणियां हैं: जन्म से पहले, जन्म के पश्चात, वेदों का अध्ययन आरंभ करने और विवाह आदि की तैयारी करने के लिए किए जाने वाले संस्कार। यह ध्यान रहे कि पुरुषों और महिलाओं के लिए भिन्न-भिन्न संस्कार हैं।

इन सभी संस्कारों पर विचार करना आवश्यक नहीं है। महत्वपूर्ण यह जानना है कि इन्हें कैसे सम्पन्न किया जाये और इनको करने में कौन-कौन सी आवश्यक योग्यताऐं संस्कार सम्पन्न करने वाले में होनी चाहिए। इन संस्कारों की एक विशेषता यह थी कि इन्हें सभी वर्णों के व्यक्ति सम्पन्न नहीं कर सकते थे या है। इस संबंध में दो प्रकार के भेदभाव भली भांति ज्ञात हैं। एक भेद वर्ण आधारित है अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि। दूसरा पक्षपात लिंग आधारित है। फलस्वरूप भेदभाव की पहली श्रेणी ने शायद जाति व्यवस्था को जन्म दिया। जिसके कारण ही बाद में समाज में सोपानक्रमिक व्यवस्था स्थापित हुई। दूसरे, लिंग आधारित भेदभाव ने पुरुषों को प्रभावित नहीं किया। पुरुष के संबंध में यह महत्वहीन रहा परंतु महिलाएं इस भेदभाव की भुक्तभोगी बनीं। इस संबंध में एक तर्क यह है कि शूद्रों की भांति महिलाओं को शिक्षा से वंचित रखा गया क्योंकि वे कुछ महत्वपूर्ण संस्कारों को सम्पन्न नहीं कर सकती थीं। इसके विपरीत यह कहना व्यर्थ है कि कुछ मामलों में पुरुष उन संस्कारों के हकदार नहीं थे जिनकी हकदार महिलाएं थीं क्योंकि पुरुष वास्तव में ऐसी किसी सीमा से बाहर थे। परंतु ऐसा महिलाओं के मामले में नहीं था। यहां एक विशेष संस्कार का उल्लेख किया जा सकता है। उदाहरण के लिए ब्रह्मोपदेश की आज तक भी शूद्रों और महिलाओं के लिए अनुमति नहीं है। यही वह विशेष संस्कार है जो ब्राह्मण जाति को विशेष रूप से एक अलग जाति बनाता है। यह इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि इस संस्कार के पूरा होने के बाद ब्राह्मण को 'द्विज' (दो बार उत्पन्न) क्यों कहा जाता है। कहा जाता है कि इस संस्कार के किए जाने से पहले ब्राह्मण नहीं है और मान्यतानुसार यह संस्कार उसे दूसरा जन्म देता है।

निश्चित रूप से, चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में भी इस विशेष तर्क का सभी समर्थन नहीं करते। वास्तव में जिस तर्क का यहां उल्लेख किया जा रहा है, वह स्मृतियों द्वारा निर्धारित कुछ स्थापित अथवा स्वीकृत मानकों के विपरीत है और जिन्हें ब्राह्मणों के बारे में बताते समय पूरी तरह से उपेक्षित किया गया है। हमारा उद्देश्य निश्चित रूप से चातुर्वर्ण्य अथवा जाति व्यवस्था के गुण-दोषों का अवलोकन करना नहीं है बल्कि विश्वास-प्रणालियों में हुए संरचनात्मक परिवर्तनों पर प्रकाश डालना है। उस परिप्रेक्ष्य को जानना है जिसमें प्राचीन रीति-रिवाजों को समझा गया और उनसे उत्पन्न उन तीव्र परिवर्तनों को, जिन्होंने समाज को प्रभावित किया, प्रदर्शित करना है। क्योंकि यही तो भारतीय समाज में विशेषरूप से शताब्दियों से हुआ है।

यदि हम 'संस्कार' शब्द के शाब्दिक अर्थ पर विचार करे तो यह स्पष्ट है कि इसका अर्थ पुरुष (अथवा महिला) का आध्यात्मिक रूप से उत्थान करना है। तर्क दिया जाता है कि ये सकारात्मक परिणों में अन्य वर्ग प्रस्तुत करते हैं, मानव का भौतिक कल्याण उनमें से

एक है। यदि ऐसा है तो एक विशेष वर्ग (अथवा वर्गों) को इस लाभ से वंचित क्यों किया गया? दार्शनिक ढांचे के अंतर्गत इस प्रश्न का कोई उत्तर खोजना संभव नहीं है। कोई मनोवैज्ञानिक अथवा कोई समाजशास्त्री ही इस प्रकार के प्रश्नों पर प्रकाश डाल सकता है।

इस तथ्य के बावजूद कि संस्कारों का स्वरूप आध्यात्मिक था, इनके अनुपालन के पीछे का एकमात्र उद्देश्य सांसारिक ही है। संस्कारों में भौतिक जीवन के सभी पहलुओं के लिए यदि कोई अर्थपूर्ण आधार नहीं भी खोजा जा सके तो भी आध्यात्मिक समर्थन अवश्य प्राप्त किया जा सकता है। भिन्न–भिन्न कारणों से संस्कारों को उपनिषदों और नास्तिक दार्शनिक पद्धतियों से समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। एक ओर जहां उपनिषदों ने संस्कारों को सांसारिक लक्ष्य के कारण अस्वीकार कर दिया। वहीं नास्तिक पद्धतियों ने प्रबल रूप से संस्कारों के प्रति इसलिए प्रतिक्रिया व्यक्त की क्योंकि ये वेदों से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित थे।

अपनी दार्शनिक मान्यताओं में मतभेदों के बावजूद, उपनिषद् और नास्तिक दार्शनिक विचारधाराओं दोनों ने मठों और आश्रमों के जीवन को स्वीकृति प्रदान की। वास्तव में भौतिक जगत की सभी वस्तुओं से उदासीन होने के कारण उन्होंने संस्कारों का विरोध किया। इस चर्चा से एक महत्वपूर्ण तथ्य यह उभर कर सामने आता है कि यदि धर्म को धर्म के रूप में समझा जाये तो दर्शन और धर्म हमेशा एक–दूसरे से मेल नहीं खाते हैं। जहां संस्कारों का संबंध धर्म से है वहीं उपनिषदों का दर्शन से है।

अथर्ववेद का कौशिक सूत्र, पूर्व में उल्लेखित सूत्रों के विपरीत किसी भी प्रकार के आध्यात्मिक विषय के साथ संबंधित नहीं होने के कारण अपने आप में विशेष है। यह औषधीय पौधों के बारे में बताता है एवं भारतीय चिकित्सा पद्धति को समझने में सहायता करता है। गृह्य सूत्र और धर्म सूत्र के मध्य एक स्पष्ट अंतर है। जहां गृह्य सूत्र मानव के केवल परिवार से सम्बंधित कर्मों के नियन्त्रण तक सीमित है वहीं धर्म सूत्रों का मुख्य विषय सामाजिक आचार–विचार है। गौतम का धर्म सूत्र सबसे प्राचीन सूत्र माना जाता है। ये सूत्र केवल चातुर्वर्ण्य व्यवस्था है। गौतम का धर्म सूत्र सबसे प्राचीन सूत्र माना जाता है। ये सूत्र केवल चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अनिवार्य कर्तव्यों का ही उल्लेख नहीं करते बल्कि एक शासक के कर्तव्यों–राज धर्म का भी उल्लेख करते हैं। भारतीय संदर्भ में नैतिकता अनिवार्य रूप से धर्म सूत्रों द्वारा प्रस्तावित है। इसलिए, धर्म सूत्र की सीमाएं और कमियों का नैतिक सिद्धांतों की स्वीकार्यता पर विशेषरूप से प्रभाव पड़ा है।

अन्त में, शुल्ब सूत्र पर विचार करते हैं। यद्यपि यह सूत्र भी यज्ञ करने के संदर्भ में ही प्रासंगिक है। यह यज्ञ के केवल ज्यामितीय पक्षों तक सीमित है क्योंकि ज्यामिति के पर्याप्त ज्ञान के अभाव में वेदिकाओं का निर्माण असंभव था। शुल्ब सूत्र प्राचीन भारतीयों के वैदिक जीवन के विभिन्न आयामों को पूरा करने के उद्देश्य से उनके द्वारा विकसित प्राचीन प्रौद्योगिकी का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्य : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. शिक्षा से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

2. गृह्य सूत्रों पर एक टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2.5 महाकाव्य

रामायण और *महाभारत* ऐसे दो महाकाव्य हैं जिन्होंने भारत के सभी भागों में अनेक शताब्दियों तक रचित साहित्य को प्रभावित किया है। *रामायण, महाभारत* के विपरीत दार्शनिक रूप से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। हमें इन दोनों महाकाव्यों के साहित्यिक महत्व से भी कोई सरोकार नहीं है, यद्यपि *रामायण* सनातन धर्म के सिद्धांतों और विशेषकर शासक के कर्तव्यों के सम्बन्ध में जानकारी उपलब्ध कराती है। यद्यपि इसमें दार्शनिक रूप से कुछ नया नहीं है, इसलिए हम इस पर विचार नहीं करेंगे। हमारे उद्देश्य की पूर्ति के लिए *महाभारत* के दार्शनिक पक्ष पर ध्यान देना ही पर्याप्त है।

साहित्य, संस्कृति आदि के अध्ययन में तर्कशास्त्र और ज्ञान मीमांसा, जो दार्शनिक परम्परा का निर्माण करते हैं, का कोई उचित उपयोग नहीं होता है। *महाभारत* का दार्शनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करते समय भी हम इसके साहित्यिक एवं सांस्कृतिक पक्षों पर विचार नहीं करेंगे। इस रचना में दो मुख्य दार्शनिक मुद्दे हैं; एक मुद्दा बहुत ही असंतोषजनक ढंग से *भगवद्गीता* में प्रस्तुत किया गया है क्योंकि सह आस्तिक परंपरा की एक रचना है दूसरा मुद्दा नैतिकता और राज्यव्यवस्था का है जिसे इसके दो प्रमुख चरित्रों विदुर और भीष्म के माध्यम से समझाया गया है। परंतु इस कृति के ये दार्शनिक मुद्दे गंभीर रूप से दार्शनिक दृष्टिकोण सम्बंधी गड़बड़ी से ग्रसित हैं। किसी भी मुद्दे की हम कहीं भी विवेचना या आलोचना, जो दर्शन की मुख्य पहचान है, नहीं पाते। कुल मिलाकर हमें इसमें केवल धर्मोपदेश के सिवाय कुछ नहीं मिलता। इसलिए यहां पर इन तत्वों का संक्षिप्त विवरण ही पर्याप्त है।

विदुर का नैतिक दर्शन

नीतिशास्त्र के दृष्टिकोण से कुछ मानव सदगुण को साकार रूप दे देते हैं। विदुर और भीष्म *महाभारत* के ऐसे ही दो चरित्र हैं। *महाभारत* में इनके विपरीत बुराई को साकार रूप देने वाले चरित्र भी हैं। यहां प्रश्न खड़ा होता है कि किसी महाकाव्य को बुराई के चरित्र क्यों प्रदर्शित करने चाहिए। दूसरे, व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखें तो क्या ये वास्तव में बुरे चरित्र हैं?

यह दूसरा प्रश्न दार्शनिक रूप से बहुत गुढ़ है और इसका सरलता से उत्तर नहीं दिया जा सकता। जबकि पहले प्रश्न का समाधान करना कुछ आसान है। कोई भी महाकाव्य प्रस्तुति में विशाल होता है क्योंकि इसमें संसार के सभी तथ्य और जीवन के सभी पक्ष सम्मिलित होते हैं। अतः बुरे चरित्रों को किसी भी महाकाव्य में स्थान मिलना ही चाहिए।

नैतिक सिद्धांतों की विदुर की व्याख्या श्रेयस और प्रेयस की बीच स्पष्ट अंतर से आरंभ होती है। ये (विदुर) श्रेयस की तुलना रूचिकर न होने के कारण औषधि के साथ करते हैं इसके तुरन्त बाद प्रेयस, जिसके साथ बुराई निरन्तर चलती है, की स्थिति को प्रदर्शित करने के लिए तत्काल एक दूसरा दृष्टान्त प्रस्तुत किया जाता है। इस सहगामी संबंध को स्पष्ट बनाने के लिए विदुर प्रेयस (सुखकर) की तुलना मधु (शहद) के साथ करते हैं। विदुर कहते हैं कि सुख की चाह वाला व्यक्ति शहद की चाह रखने वाले उस व्यक्ति के समान है जो पेड़ पर लगे शहद की चाह में नीचे खुले पड़े गर्त या कुऐं में गिर पड़ने की सम्भावना से अनभिज्ञ होता है। ठीक इसी प्रकार सुख की चाह वाला व्यक्ति भी सुख के साथ जुड़ी बुराईयों (दुखों) से अनभिज्ञ होता है।

महाभारत में विदुर अधिकांशतः एक परामर्शदाता की भूमिका निभाते हैं और उनके परामर्श के आधार नैतिक होता है। ये मन की दो अवस्थाओं के बीच स्पष्ट अंतर करते हैं; एक बुद्धिमान व्यक्ति की मानसिक अवस्था और दूसरी अज्ञानी अवस्था। जहां प्लेटो चार मूल सद्गुणों की बात करते हैं यही विदुर छह मूल अवगुणों (बुराइयों) का उल्लेख करते हैं लालच आथवा लोभ उनमें से एक है। शेष पांच बुराइयां हैं; कामुकता, क्रोध, विवेकहीन मोह, अहंकार और ईर्ष्या। उनके अनुसार ज्ञानी व्यक्ति इन सब से दूर रहता है। यहां यह ध्यान देना बहुत दिलचस्प है कि विदुर प्लेटो से अज्ञानी के चरित्र को लेकर सहमत है। अज्ञानी यह व्यक्ति है जो अपने कर्तव्य की उपेक्षा करता है और यह कार्य करने का प्रयास करता है जो उसका कार्य नहीं है। दूसरे, यह एक सच्चे मित्र और शत्रु में भेद नहीं कर सकता। अज्ञानी व्यक्ति के लिए बताई गई सभी विशेषताएं प्लेटो द्वारा उल्लेखित थेसिमेकस, जो सुकरात के विचारों का कड़े ढंग से विरोध करता है, में पाई जाती है। अंत में, विदुर दस नीति–निदेशक सिद्धांतों की सूची प्रस्तुत करते हैं जिसमें से एक सिद्धांत मनुष्यों को तीन वर्गों, संरक्षकों (दार्शनिक राजा), सैनिकों, और दस्तकारों में बांटता है। यह वर्गीकरण प्लेटो के वर्गीकरण के समान है। विदुर और प्लेटो का मानना है कि इन तीन वर्गों को केवल उन्हें दिए गए कार्यों (कर्तव्यों) को करना चाहिए। इसका अर्थ है कि प्लेटों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का अपने वर्ग सम्मत कर्तव्यों का निर्वाह करना न्याय है और विदुर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने वर्ग सम्मत कर्तव्यों का निर्वाह करना धर्म है। यही कल्याणकारी राज्य का मूल सिद्धांत है और यही विदुर के नैतिक दर्शन का सार भी है।

अंतिम संभाग में विदुर मृत्यु और उसे स्वीकार करने की आवश्यकता के बारे में बात करते हैं। यदि मनुष्य मृत्यु की अनिवार्यता को स्वीकार नहीं करता है तो मृत्यु और भय को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। इस संदर्भ में विदुर इस वास्तविक तथ्य (मानव स्वभाव) को स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि मनुष्य मुश्किल से ही बुद्धि का अनुसरण करते हैं। यहां पर विदुर एवं बुद्ध में असाधारण समानता है। बुद्ध के अनुसार भी तृष्णा दुःख का कारण है और उपचार सत्य की अनुभूति और दार्शनिक ज्ञान में विद्यमान है। इस संबंध में विदुर, भगवान बुद्ध और प्लेटो के विचारों में समानता प्रदर्शित होती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारतीय परंपरा में दर्शन को सदैव जीवन पद्धति के रूप में समझा गया है।

भीष्म का राजनीतिक दर्शन

राजनीतिक दर्शन का पश्चिमी रूप जिस ढंग से समझा जाता है और प्रयोग किया जाता है यह प्राचीन भारतीय राजव्यवस्था की अवधारणा से अलग है। यह अन्तर वास्तव में दो विपरीत ध्रुवों जैसा बड़ा अन्तर है। वर्तमान व्यवस्था जहां अधिकारों पर आधारित है वही प्राचीन भारतीय राज व्यवस्था कर्तव्यों पर आधारित थी। यद्यपि वर्तमान लोकतन्त्र व्यवस्था, जो शासन का सर्वाधिक उदार रूप है, भी नागरिकों के लिये मूलभूत अधिकारों के साथ–साथ उनके लिये कुछ कर्तव्यों का निर्धारण करती है। अतः निसन्देह नीति–निर्देशक सिद्धांत किसी भी लोकतन्त्र व्यवस्था की रीढ़ होते हैं। दूसरी ओर, भीष्म का धर्मराज (युधिष्ठिर) को दिया गया राजनैतिक ज्ञान एक अलग स्थिति को प्रदर्शित करता है। ये नागरिकों के कर्तव्यों का उल्लेख किए बिना, केवल शासक के कर्तव्य ओर उत्तरदायित्व बताते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि वास्तविक अर्थ में नागरिक राजा है और राजा उनका संरक्षक। प्लेटो ने अनेक शताब्दियों पहले *महाभारत* में प्रदर्शित राजा की अवधारणा के समान संरक्षकों की भूमिका की रचना की थी। भीष्म का व्याख्यान न केवल स्पष्ट रूप से राजा के गुणों एवं विशेषताओं और कर्तव्यों का उल्लेख करता है बल्कि यह लोक प्रशासन पर सर्वप्रथम निबंध भी है। आइए इन पहलुओं पर संक्षेप में विचार करें।

राजा को सक्रिय, सत्यवादी और स्पष्टवादी होना चाहिए। भीष्म के अनुसार ये राजा की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। उसे दयालु तो होना चाहिए परंतु बहुत अधिक मृदु (नरम) नहीं होना चाहिए। यह ध्यान देना दिलचस्प होगा कि प्लेटो दूसरे छोर से आरंभ करते हुए समान निष्कर्ष पर पहुंचते हैं। ये कहते हैं कि संरक्षकों को संयत शारीरिक प्रशिक्षण के साथ–साथ संगीत का भी प्रशिक्षण दिया जाता चाहिए जिससे ये कठोर तो हो परन्तु दयालु और न्यायप्रिय भी रहें। राजधर्म का सार नागरिक के हितों का संरक्षण करना है। वास्तव में भीष्म ने एक आदर्श राजा में छत्तीस गुण (विशेषताएं) बताए हैं। ये गुण राजधर्म का पालन करने के लिए आवश्यक है। इनके बिना नागरिक राजा से संरक्षण प्राप्त नहीं कर सकते।

विदेश नीति लोक प्रशासन का एक अन्य पहलू है। विदेश नीति में दो शक्तियां शत्रु और मित्र सम्मिलित हैं। मित्रों की भूमिका पर भीष्म अधिक प्रकाश नहीं डालते। परंतु ये कहते हैं कि राजा को यह अवश्य पता होना चाहिए कि शत्रु के साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए। इस विषय में बुद्धिमता सदैव राजा की मार्गदर्शक शक्ति होती है। भीष्म इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यद्यपि युद्ध समाधान नहीं है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि शत्रु पर अनावश्यक दया दिखाई जाये एवं उस पर ध्यान न रखा जाये। इसके विपरीत, केवल निरंतर सतर्कता, दुर्बलता को छिपाना, और उचित निर्णय ही सुरक्षा सुनिश्चित कर सकते हैं। ये सभी विवरण सामान्य परिस्थितियों में लागू होते हैं जबकि विपत्ति में शत्रु भी दया के पात्र होते हैं क्योंकि कष्ट के समय अच्छा मानवीय व्यवहार शत्रुता को नष्ट कर सकता है। अंततः दयालुता पूर्ण व्यवहार अन्य कड़वे अनुभवों को नष्ट कर देता है।

भगवद्गीता

भगवद्गीता एक पवित्र ग्रन्थ है। इसमें लगभग 700 श्लोक हैं और इसका मूल श्रोत *महाभारत* है। *भगवद्गीता* के उपदेशक कृष्ण हैं जिन्हें इस पुस्तक में भगवान के रूप में प्रस्तुत किया गया है कुरूक्षेत्र के मैदान में युद्ध प्रारम्भ होने से पहले कृष्ण और अर्जुन

के मध्य होने वाला संवाद इस पुस्तक की विषय वस्तु है। कृष्ण, अर्जुन के अपने भाइयों एवं सगे–सम्बंधियों से युद्ध करने सम्बंधि उलझन एवं नैतिक द्वन्द्व के उत्तर में उसे उसके क्षत्रिय धर्म एवं राज धर्म की याद दिलाते हैं। इसी क्रम में वे विभिन्न यौगिक और वेदान्तिक दर्शन शास्त्रीय सिद्धान्तों की विवेचना करते हैं। इसलिए इसे प्रायः हिन्दु धर्मशास्त्र की एक सहायक पुस्तक के साथ–साथ सांसारिक व्यापारों एवं जीवन का मार्गदर्शन करने वाली एक सम्पूर्ण पवित्र सहायक पुस्तक माना जाता है। इसे भारतीय वाग्मय में उपनिषद् का स्तर प्राप्त होने के कारण *गीतोपनिषद्* कहा जाता है। अब, चूँकि *गीता* की उत्पत्ति *महाभारत* से हुई है। इसलिए इसे 'स्मृति' ग्रंथ की श्रेणी में रखा जाता है। तथापि, हिन्दु धर्म की उन शाखाओं के लिये जो इसे उपनिषदों का स्तर प्रदान करती है यह 'श्रुति' की श्रेणी का ग्रंथ है। चूँकि यह सभी उपनिषदों में व्यक्त ज्ञान का सार प्रस्तुत करती है इसलिए इसे 'उपनिषदों का उपनिषद्' भी कहा जाता है।

गीता के तीन प्रमुख विषय हैं। ये हैं: ज्ञान, सामाजिक उत्तरदायित्व (कर्म), और भक्ति अथवा समर्पण। इन मुख्य विषयों के संगम को योग के नाम से जाना जाता है। यहां पर हमारा सरोकार *गीता* के व्यवहारिक जीवन सम्बंधित निर्देश नहीं है बल्कि इसका दार्शनिक पक्ष है। यद्यपि *गीता* में कहीं भी इसके दार्शनिक आधार का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है। उदाहरण के लिए भक्ति पर विचार कीजिए। भक्ति केवल तभी अर्थपूर्ण हो सकती है जब हम भक्त एवं भगवान को एक दूसरे से सर्वथा भिन्न माने। दूसरे शब्दों में अद्वैत का खंडन भक्ति की प्रासंगिकता को स्वीकार करने की पहली शर्त है। परंतु *गीता* में हमें द्वैत अथवा अद्वैत का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता इसके विपरीत, *गीता* सामाजिक कर्तव्यों अथवा कर्म और ज्ञान का भक्ति में विलय कर देती है।

गीता से एक बात तो स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति इस संसार को त्याग देता है तो वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। संसार छोड़ना उत्तरदायित्वों को छोड़ना है इस प्रकार *गीता* के समर्थन में एक दावा तो निस्संकोच किया जा सकता है कि *गीता* सांसारिक जीवन की कीमत पर आध्यात्मिकता को प्राथमिकता नहीं देती। तथापि यह आरोप की यह आध्यात्मिकता को प्राथमिकता देती है और यह प्रत्यारोप कि यह आध्यात्मिकता को प्राथमिकता नहीं देती है दार्शनिकरूप से महत्वहीन हैं। परंतु इस बात का उल्लेख इसलिए करना आवश्यक है क्योंकि कर्म के संबंध मे मोक्ष की प्राप्ति *गीता* का प्राथमिक उद्देश्य है।

आइए अब भक्ति को छोड़कर और केवल कर्म योग तथा ज्ञान योग पर ध्यान दें। जहां ज्ञान का अर्थ उच्चतम स्तर पर अनुभूति से है वहीं कर्म का अर्थ बिल्कुल इससे भिन्न है। वैदिक काल के दौरान कर्म का अर्थ यज्ञ करना था। परंतु *गीता* में इसका अर्थ सामाजिक कर्तव्यों से है। योग को समर्पण के अर्थ में समझा जाता है। इस प्रकार कर्मयोग को प्रतिबद्धता के बोध के साथ कर्तव्य का निर्वाह करना समझा जा सकता है।

गीता में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व निष्काम कर्म का सिद्धांत है जिसका अर्थ निस्वार्थ ढंग से उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना है। यह दृष्टिकोण यज्ञों का बिल्कुल निषेध करता है क्योंकि व्यक्ति इन्हें सवार्थपूर्ण उद्देश्य से करता है तथापि *गीता* कर्म के परित्याग का समर्थन नहीं करती। बल्कि यह कर्म फल की इच्छा के त्याग की महत्ता पर बल देती है। यह केवल निजी हित के उपेक्षा करती है और सामाजिक हित का समर्थन करती है। इस प्रकार व्यक्ति साधन बन जाता है और समाज साध्य अथवा उद्देश्य। कर्तव्य के प्रति निर्वैयक्तिक दृष्टिकोण किसी भी प्रकार से कर्ता को प्रभावित नहीं करता अर्थात न तो सफलता और नहीं असफलता उसे प्रभावित करती है। यह दृष्टिकोण ही समत्व मनोभाव (स्थितप्रज्ञ) है।

यहां कर्म और वर्ण के अर्थ के बीच संबध को स्पष्ट करना आवश्यक है। इस अवस्था में, चातुर्वर्ण्य वर्गीकरण प्रासंगिक हो जाता है यदि साधारण भाषा में इसका अनुवाद किया जाए तो इसका अर्थ व्यवसाय (कार्य) के प्रति वचनबद्धता है। 'चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।' इसका अर्थ है गुण और (व्यवसाय–कार्य) वर्ण का निर्धारण करते हैं अर्थात गुण व्यवसाय (कार्य) का निर्धारण करता है।

गीता प्रतिबद्धता और हित अथवा स्वार्थ के बीच एक स्पष्ट भेद करती है। प्रतिबद्धता निर्वैयक्तिक होती है जबकि स्वार्थ वैयक्तिक (निजी) होता है। निजी स्वार्थ अथवा हित एक अर्थपूर्ण अवधारणा है परंतु निहित प्रतिबद्धता जैसी कोई वस्तु नहीं होती। जब निहित स्वार्थ व्यक्ति को प्रभावित करता है तब वह निषिद्ध साधनों का सहारा ले सकता हैं परंतु निर्वैयक्तिक प्रतिबद्धता इस प्रकार के चयन में नहीं बदलती। *गीता* में कर्म पर बल दिया गया है परंतु फल की उपेक्षा की गई है। यह सिद्धांत की, 'साध्य, साधन को प्रमाणित नहीं करता' *गीता* में निहित है यह अन्य शब्दों में *गीता* का सार है।

एक और पक्ष का उल्लेख करना अभी शेष है। एक गलत धारणा यह है कि कार्यों (व्यवसाय) में सोपानक्रम है। *गीता* में ऐसा उल्लेख नहीं है परंतु 'अच्छा' और 'बुरा' अथवा 'रचनात्मक' और 'विध्वंसात्मक' के बीच स्पष्ट अंतर है। प्रत्येक ऐसे कर्तव्य का निर्वाह करना अच्छा है जो व्यक्ति की प्रकृति (स्वभाव) के अनुरूप होता है अन्यथा, यह बुरा है। स्पष्ट रूप में कहा जाए तो श्रम के बीच विभाजन है और यह समाज के हित में है क्योंकि इस प्रकार का विभाजन अनिवार्य है। अतः कार्य मे गुणात्मक अंतर को प्रबल रूप से अस्वीकार किया जाता है।

बोध प्रश्न 3

ध्यातव्य : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिए।

ख) इकाई के अन्त में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. भीष्म की विदेश नीति के बारे में आप क्या जानते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2. निष्काम कर्म से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2.6 सारांश

भारतीय धर्मग्रंथों में मुख्य रूप से उपर के तीन वर्णों के हिंदुओं की जीवन शैली का वर्णन किया गया है। मुख्यतः चार स्रोतों से इस जीवन पद्धति को जाना जा सकता है। इन स्रोतों में स्मृतियां भी हैं जिन्होंने जाने–अनजाने में जाति व्यवस्था को संस्था का रूप दिया। और महिलाओं को पददलित किया। तथापि स्मृतियां आज के संविधान से मिलती–जुलती हैं। पुराणों को इतिहास से क्या पृथक् करता है, यह अस्पष्ट है। वेदांग, वेदों के जटिल विचारों को स्पष्ट करते हैं। वे स्वर–शैली, व्याकरण, संरचना आदि का उल्लेख करते हैं। वेदांगों के अनुसार, मंत्रों का उच्चारण करते समय उनके अर्थ को जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है। कल्प सूत्रों की संख्या चार है। यह इस बात से संबंधित है कि किन अनुष्ठानों को किया जाना है और कैसे किया जाना है इत्यादि। *महाभारत* का न केवल साहित्यिक महत्व है बल्कि यह राजनीतिक व्यवस्था पर पहली पुस्तक है। शुद्ध दार्शनिक कार्य (रचना) के रूप में *गीता* का महत्व भले ही कम हो परन्तु नैतिक दर्शन के क्षेत्र में इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। *गीता* अपने नैतिक दर्शन में व्यक्ति की कीमत पर समाज को प्राथमिकता देती है।

2.7 कुंजी शब्द

वेदांग : वेदांग वेद के अंग हैं। ये छह हैं– शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प। ये वेद को समझने के लिए आवश्यक हैं।

सूत्र : 'सूत्र' का शाब्दिक अर्थ रस्सी अथवा धागा है जो वस्तुओं को एकसाथ बांधता है और अलंकारिक रूप से यह सूक्ति अथवा रेखा, नियम, सूत्र अथवा संहिता के रूप में ऐसी सूक्तियों का संग्रह है।

महाकाव्य : रामायण और महाभारत दो महाकाव्य हैं जिन्होंने अनेक शताब्दियों तक भारतीय साहित्य को प्रभावित किया है।

2.8 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

काणे, पी.वी. *हिस्ट्री ऑफ धर्म शास्त्र*, वॉल्युम–1, 2. पुणेः भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1999.

पाण्डे, राजबली. *हिंदू संस्कार्स*. देल्हीः मोतीलाल बनारसी दास, 2002.

राधाकृष्णन् एस. *इण्डियन फिलॉसोफी*, वाल्यूम–1. नयू देल्हीः आक्सफोर्ड यूनियर्सिटी प्रेस, 1967.

हिरियण्णा, एम. *आउटलाइंस ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी*. लंदनः जॉर्ज एलेन एंड अनविन, 1958.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

दासगुप्त, सुरेन्द्र नाथ. *भारतीय दर्शन का इतिहास* (पांच भाग). अनुवाद– कलानाथ शास्त्री एवं सुधीर कुमार. जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1977.

राधाकृष्णन, एस. *भारतीय दर्शन* (दो खण्ड). अनुवाद– नन्दकिशोर गोमिल. दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स, 2015.

2.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. 'स्मृति' का एक महत्पूर्ण पहलू इसकी नैतिक कठोरता है। कार्यों (कर्तव्यों) का निर्धारण और कर्तव्यों के पालन पर विशेष बल कुछ सीमा तक इन्हें संविधन में बताए गए नीति निर्देशक सिद्धांतों के समान बनाता है। समाज का चार श्रेणियों में विभाजन एक प्रकार है और व्यक्तिगत जीवन का चार अवस्था में विभाजन दूसरा प्रकार। स्मृति न केवल चार वर्गों के विभाजन के बल्कि व्यक्ति के जीवन में चार अवस्थाओं (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) के बारे में बहुत स्पष्ट उल्लेख करती है। एक स्थिति से दूसरी स्थिति में अपने आप जाने का कोई अवसर नहीं है। अंतिम विभाजन अर्थात पापों का प्रयाश्चित वास्तव में इस प्रकार के निषिद्ध परिवर्तन से संबंधित है। इस प्रकार के निषेध के परिणाम स्वरूप व्यक्तिगत स्वतंत्रता के ऊपर समाज में स्थायित्व को प्राथमिकता दी गई। इससे हमें स्मृति द्वारा समर्थित राजनीतिक व्यवस्था के बारे में अनुमान लगाने में सहायता मिलती है। निश्चित रूप से स्मृति ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का समर्थन नहीं किया यद्यपि वैदिक काल के दौरान लोकतांत्रिक व्यवस्था खूब फली–फूली।

2. पुराणों की संख्या अठारह है। चूंकि ये दार्शनिक रूप से प्रासंगिक नहीं है इसलिए उनके बारे में उल्लेख करना आवश्यक भी नहीं है। अनेक पुराण ब्रह्मांड विज्ञान से संबंध रखते हैं। शायद, केवल यही एक विषय है जो दर्शन और पुराण में सामान्य है। रोचक बात यह है कि एक पुराण अर्थात् वायु पुराण में भूगोल, संगीत आदि पर भी प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। प्रमाण न मिलने के अतिरिक्त पुराण में एक और त्रुटि हैं सभी पुराणों में देवी–देवताओं, राक्षसों, मृत्यु के बाद जीवन आदि से संबंधित अनुश्रुतियों को जोड़ा गया है जो गंभीर दार्शनिक अध्ययन का विषय न हो सकने के कारण पुराणों को दार्शनिक से हल्का बना देती है।

बोध प्रश्न 2

1. सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में शिक्षा को इस प्रकार परिभाषित किया है: 'जो स्वर और वर्ण के अनुसार उच्चारण सिखाती है, शिक्षा कहलाती है'। वाणी में स्पष्टता और सही–सही सुनने की योग्यता वेदों को सीखने की पूर्व शर्त है। यही कारण है कि वेदों को अनुश्रव (सुनने के बाद अनुसरण किया जाता है) कहा जाता है।

2. गृह्य सूत्र, गृहस्थ कर्तव्यों को बताता है। सभी गृह सूत्र इस विशेष बात पर सहमत है कि 'क्या किया जाना चाहिए'। परंतु ये अन्य बात कि 'किस प्रकार किया जाना चाहिए' पर सहमत नहीं है। उदाहरण के लिए कोई भी गृह्य सूत्र विवाह की प्रासंगिकता को लेकर असहमत नहीं है। उदाहरण के लिए कोई भी गृह्य सूत्र विवाह की प्रासंगिकता को लेकर असहमत नहीं है। परंतु ये विवाह को किये जाने के तरीकों पर सहमत नहीं है दूसरे सभी चार सूत्र एक–दूसरे के पूरक हैं। अतः उनमें न तो कोई विकल्प है और न ही कोई विरोधाभास। निष्कर्षतः व्यक्ति को अपना दायित्व पूरा करने के लिए उसे निर्धारित ढंग से सभी अनुष्ठान करने चाहिए।

बोध प्रश्न 3

1. विदेश नीति लोक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। विदेश नीति में दो शक्तियां शत्रु और मित्र निहित हैं। मित्रों की भूमिका पर तो भीष्म ने बहुत प्रकाश नहीं डाला है। परंतु उनके अनुसार राजा को यह जानना चाहिए कि शत्रु से कि प्रकार निपटा जाए। इस विषय में बुद्धिमता एक मार्गदर्शी शक्ति है। भीष्म इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यद्यपि युद्ध समाधान नहीं है और न ही इसका यह अर्थ है कि शत्रु को छोड़ देना चाहिए। केवल लगातार सावधानी, अपनी कमी को छिपाना और उचित निर्णय ही सुरक्षा को सुनिश्चित कर सकते हैं। ये सभी विवरण सामान्य परिस्थितियों में लागू होते हैं जबकि विपत्ति में शत्रु भी अनुकंपा का उपभोग कर सकते हैं क्योंकि सकारात्मक मानवीय व्यवहार शत्रुता को भी नष्ट कर सकता है। अतः दयालुतापूर्ण व्यवहार अन्य कड़वीं बातों को भुला सकता है।

2. *गीता* में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व निष्काम कर्म का सिद्धांत है जो निर्वैयक्तिक रूप से दायित्वों का वहन करने में निहित है। यह दृष्टिकोण पूरी तरह से यज्ञ को नकारता है क्योंकि व्यक्ति इसे स्वार्थ के उद्देश्य से करता है। परंतु *गीता* ने यह समर्थन कभी नहीं किया कि 'कर्म' का त्याग कर देना चाहिए बल्कि *गीता* स्पष्ट रूप से इस बात का समर्थन करती है कि 'कर्म–फल' का त्याग कर देना चाहिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 3 महाकाव्यों का दर्शन[3]

रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 परिचय

3.2 अवलोकन

3.3 मुख्य मुद्दों/अवधारणाओं पर अनुचिन्तन

3.4 दार्शनिक प्रतिउत्तर

3.5 सारांश

3.6 कुंजी शब्द

3.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

इस इकाई में छात्र निम्नलिखित के बारे में जानेंगे;

- दर्शन और साहित्य
- एपिक्स की महाकाव्य के रूप में परिभाषा और विभिन्नता
- मुख्य महाकाव्यों का अवलोकन
- *महाभारत* और *भगवद्गीता* का अवलोकन
- *रामायण* का अवलोकन
- महाकाव्यों की दार्शनिक छाप/दृष्टि

3.1 परिचय

अपने वास्तविक अर्थ में दर्शन शास्त्र से तात्पर्य विश्व संबंधी एकात्मक दृष्टि की खोज करना है। ग्रीक इतिहास में 'सोफिया' और 'फिलो' दोनों को प्रज्ञा के प्रति प्रेम या अनुराग के रूप में समझा गया है और उससे उत्पन्न दृष्टि को 'कोस्मोथियोरिया' के रूप में वर्णित किया गया है। जर्मन दार्शनिकों ने इसे 'शेलतोंशौन' अर्थात् विश्वदृष्टि कहा। भारतीय वैचारिक परम्परा में इसे दर्शन कहा गया। विश्व की दृष्टि के इस प्रतिमान को साहित्य में भी आत्मसात् किया गया। पश्चिम से लेकर पूर्वी जगत के अनेक दार्शनिक एवं साहित्यकारों का मत है कि इन दोनों विषयों को अलग करके नहीं देखा जाना चाहिए। ये अनेक

[3] श्री अजय जायसवाल, विद्या वाचस्पति शोधक, दर्शन केन्द्र जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवादक– डॉ. विजय कुमार

वैचारिक मुद्दों पर परस्पर एकात्मकता का प्रदर्शन करते हैं इसलिए दोनों एक दूसरे के अनुपूरक और संपूरक हैं। ऐतिहासिक जगत के मूर्त दृष्टांतों के बिना दर्शन नेत्रहीन और बिना किसी दर्शन के ऐतिहासिकता रिक्त एवं रसहीन है।

जब हम एक विशेष प्रकार के काव्य जैसे कि महाकाव्य (अथवा सामान्य साहित्य) का विश्लेषण करते हैं तो उपरोक्त बिंदु लगभग स्पष्ट हो जाता। महाकाव्य के लिए अंग्रेजी में प्रयुक्त शब्द 'एपिक' का उद्भव ग्रीक शब्द 'एपिका' और लैटिन शब्द 'एपिकस' से हुआ है जिनका अर्थ होता है; कथा, कहानी, उपदेशात्मक कथन, कहावत अथवा बड़ी लम्बी कविता। अठारहवीं शताब्दी के आस पास एपिक को भव्य और वीरोचित काव्य के अर्थ में प्रयुक्त किया जाने लगा। इसी तर्ज पर मिलर विलियम ने एपिक को एक ऐसी लम्बी कथा के रूप में परिभाषित किया जिसकी संरचना समय और काल के भव्य स्तर पर की गई हो तथा जिसमें किसी अमर नायक और उसके वीरोचित कृत्यों का अंकन किया गया हो। भारत में एपिक हजारों वर्षों से लिखे जाते रहे हैं। भारतीय सन्दर्भ में एपिक या तो लौकिक साहित्य के रूप में या फिर महाकाव्य (वृहत् कविताएं) के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। इस इकाई में हम ऐसे विभाजन के आधार को समझेंगे और अग्रलिखित महाकाव्यों में से पहले दो महाकाव्यों की विषय वस्तु, प्रसंग और दर्शन पर व्यापक अनुचिंतन करेंगे।

हिन्दू महाकाव्य

महाभारत

रामायण

कालिदास के महाकाव्य

बौद्ध धर्म में अश्वघोष महाकाव्य

जैन धर्म के महाकाव्य

3.2 अवलोकन

भारत के मुख्य महाकाव्यों की विषयवस्तु, प्रसंग और दर्शन पर बात करने से पूर्व संस्कृत साहित्य में काव्य के बारे में एक मूलभूत समझ बनाना आवश्यक है। हालांकि 'काव्य' शब्द को अनेक दार्शनिकों ने अनेक ढंगों से वर्णित किया है किन्तु इस बात पर सबकी सहमति है कि कवि की रचना काव्य है (कविः कर्मा काव्यं) और काव्य को पाठक/दृष्टा के अन्दर रस उत्पन्न करने में सक्षम होना चाहिए। इसमें सौन्दर्यात्मक बोध भी समाहित होना चाहिए। फलस्वरूप, अति महत्व के संस्कृत साहित्य का सम्पूर्ण साहित्य काव्य के अंतर्गत आ जाता है।

पुनः काव्य के दो प्रकार हैं;

1— श्रव्य काव्य—

यह भाषा विज्ञान है, इसे पाठ्य अथवा दृश्य दोनों ढंगों से मौखिक रूप से संप्रेषित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत् पद्य (कविता) गद्य और चम्पू (गद्य और पद्य का सम्मिश्रण) शैली के काव्य आते हैं। पुनः गद्य काव्य के दो भाग हैं; कथा (कहानी) और आख्यायिका (आख्यान)। फिर, पद्य काव्य को महाकाव्य, खंडकाव्य और मुक्तक काव्य में विभाजित किया जाता हैं। मुक्तक काव्य नामक विभाजन विषयवस्तु के आधार पर आधारित है।

2– दृश्य काव्य–

यह मौखिक सम्प्रेषण से परे का काव्य है क्योंकि इसमें चरित्र चित्रण के माध्यम से रस का सम्प्रेषण होता है। इसका जोर चरित्रों की वेषभूषा, हाव–भाव, शारीरिक लोच, रचना, अभिनय, नाटक और अन्य ललित कलाओं पर हो सकता है। इसमें मूलत दृश्य रूपक सम्मिलित होते हैं।

काव्य/महाकाव्य का उद्भव और विकास

संस्कृत साहित्य में काव्य की उत्पत्ति ऋग्वेद के प्रारंभिक काव्यात्मक सूक्तों में हुई है। उषा सूक्त वैदिक काव्य का एक उत्कृष्ट उदहारण है। वेदों के बाद के विकास में, जैसे कि *ब्राह्मण, आरण्यक* और *उपनिषद्* में भी, काव्य काव्यात्मक और संवाद शैली में बिखरा हुआ है। इसलिए, वेदों में काव्य अथवा महाकाव्य बीज रूप में पाया जाता है न कि पूर्णतः अंकुरित रूप में। महाकाव्य के रूप में काव्य वास्तविक अर्थों में वाल्मीकि की रामायण और व्यास के *महाभारत* के साथ शुरू होता है। बाद में यह परम्परा अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि विद्वानों के द्वारा आगे बढ़ाई गयी। इस इकाई में, हम प्रथम दो महाकाव्यों की दार्शनिक दृष्टि पर प्रकाश डालेंगे।

महाकाव्यों के लक्षण

प्राचीन भारतीय विद्वानों, जैसे कि भामह, अग्निपुराण के लेखक, दण्डी, हेमचन्द्र, विश्वनाथ, ने विस्तार से महाकाव्य के कुछ आधारभूत लक्षणों को निर्धारित करने का प्रयास किया है। उनमें से दण्डी के द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य का वर्णन सर्वाधिक उत्कृष्ट और सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत है। दण्डी अपनी पुस्तक *काव्यदर्श* में कहते हैं कि काव्य का आरम्भ परमानन्द उकेरने (आशीर्वादात्मक), दैवीय के प्रति समर्पण भाव (नमस्कारात्मक) से होना चाहिए और विषय वस्तु का सूचक (वस्तुनिर्देशात्मकता) होना चाहिए। इसकी कथावस्तु पूर्णतः काल्पनिक नहीं होनी चाहिए बल्कि प्राचीन एतिहासिक अभिलेखों अथवा पौराणिक परम्परा पर आधारित होनी चाहिए।

काव्य का नायक उच्च नैतिक गुणों, जैसे कि धैर्यवान, प्रज्ञावान, साहसी, दयावान आदि, वाला होना चाहिए और उसे एक उत्कृष्ट वंश से सम्बन्धित होना चाहिए। नायक एक या एक से अधिक हो सकते हैं लेकिन उन्हें या तो समान या फिर उच्च वंश वाला होना चाहिए। इसकी रचना सर्गों जैसे कि विभिन्न खण्डों, में होनी चाहिए। सर्गों की संख्या कम से कम आठ होनी चाहिए और प्रत्येक सर्ग में एक विशिष्ट छंद वाले श्लोकों को प्रयुक्त किया जाना चाहिए। जिनमें प्रयुक्त छंद में हलका रूपांतरण किया जा सकता है, केवल कुछ अंतिम श्लोकों को छोड़ कर।

फिर, महाकाव्य को श्रृंगार रस अथवा वीर रस या फिर शांत रस में से किसी एक को प्रधान रस के रूप में और बाकि दो रसों को गौण रसों के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। इसे चार पुरुषार्थों– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। साथ ही, इसे स्पष्ट रूप से कुछ सामूहिक प्रसंगों जैसे कि नगर, गाँव, समुद्र, पर्वत, सूर्य के उदय और अस्त होना, बाग, जल क्रीडा, विवाह, विच्छेद और अलगाव, संतान उत्पत्ति, युद्ध आदि, का वर्णन करना चाहिए।

उपरोक्त लक्षणों से यह स्पष्ट है कि *महाभारत* की रचना केवल साहित्यिक विद्वत्ता का नमूना नहीं है बल्कि इसकी अपनी कुछ विशिष्ट दार्शनिक प्रस्थापनाएं भी हैं। आरम्भ में मंगलाचरण, नैतिक चरित्र का विकास, जीवन का अनेक रूपों में प्रस्फुटन, जीवन के लक्ष्यों

के रूप में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, आदि महाकाव्य में अंतर्निहित कुछ मूलभूत दार्शनिक दृष्टियां हैं। आगे हम महाकाव्यों; रामायण और *महाभारत* का एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करने के पश्चात् इन्हीं दार्शनिक अवधारणाओं पर विमर्श करेंगे।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्य : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिये।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिये।

1. एपिक और महाकाव्य का अर्थ एवं लक्षण क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

2. महाकाव्य के उद्भव और विकास का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

3.3 मुख्य मुद्दों/अवधारणाओं पर अनुचिन्तन

संस्कृत साहित्य को मोटे तौर पर दो भागों में बांटा जा सकता है– वैदिक और लौकिक। वैदिक साहित्य का सम्बन्ध परात्पर दार्शनिक मामलों से है। इसमें संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद् आते हैं। इसे शब्द प्रमाण भी कहा जाता है। लौकिक साहित्य का सम्बन्ध भौतिक जगत की विषयवस्तुओं से है। आम व्यक्ति इन विषयों का प्रतिदिन सामना करता है और यह भौतिक जगत पलट कर उसके दिन प्रतिदिन के निजी एवं सार्वजानिक जीवन को प्रभावित करता है। जहां वैदिक साहित्य के प्रथम कवि ब्रह्मा थे वहीं लौकिक साहित्य के प्रथम कवि संत वाल्मीकि माने जाते हैं। इसलिए वाल्मीकि को आदि कवि कहा जाता है। आदि का अर्थ प्रथम और महान दोनों है।

1. रामायण

वाल्मीकि द्वारा रचित रामायण का विश्लेषण करने से हमें पता चलता है कि उन्हें आदि कवि क्यों माना जाता है। जवाहर लाल नेहरू के अनुसार– महाकाव्य की कहानी हमारे (भारतीय) लोगों के जीवन के विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करती है। इसकी प्रशंसा में ए ए मेक्डोनल भी कहते हैं, विश्व साहित्य की उद्भव में लौकिक किसी भी रचना ने लोगों के जीवन और चिंतन को उतने गहरे से प्रभावित नहीं किया जितना रामायण ने किया है।

रामायण की संरचना

तथापि रामायण भारत में इतनी अधिक प्रसिद्ध है कि इसका व्यापकता से वर्णन करना दोहराव ले कर आता है किन्तु फिर भी इसकी बनावट को संक्षेप में समझना आवश्यक है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से रामायण शब्द दो संस्कृत शब्दों से मिलकर बना है– राम और आयण, जिसका अर्थ होता है राम का पथ अथवा स्थान। यह राम के भव्य और शौर्यपूर्ण जीवन की कथा है। रामायण में 24000 श्लोक हैं जो सात अध्यायों, बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, आरण्यककाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुंदरकाण्ड, युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड, में विभाजित हैं। संक्षेप में इन अध्यायों का सार निम्नलिखित है,

1. बालकाण्ड

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें बताया गया है कि राम और उनके भाई, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म कैसे हुआ, उन्हें गुरुकल (प्राचीन वैदिक विद्यालय) में कैसे भेजा गया और उन्होंने किस प्रकार अनेक कलाओं जैसे कि धनुर्विद्या, राजनीति, नीतिशास्त्र, प्रतिदिन के कर्मकाण्ड आदि का ज्ञान प्राप्त किया।

2. अयोध्याकाण्ड

दूसरे अध्याय का प्रसंग स्थान अयोध्या नगरी है। जब चारों राजकुमार अयोध्या वापिस आते हैं तो राम का राजतिलक होना तय होता है। राम शिव धनुष का भंजन करके सीता से विवाह करते हैं। किन्तु, मन्थरा की ईर्ष्या के कारण राम अपना राजमुकुट त्याग कर अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ चौदह वर्षों के लिए वन को चले जाते हैं।

3. अरण्यककाण्ड

इसमें राम के वन निर्वासन के आरम्भिक वर्षों का वर्णन है। इस दौरान अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं घटित होती हैं जो राम, सीता और लक्ष्मण की धर्मशीलता और साहस को प्रदर्शित करती हैं। अध्याय की परिणति लंका के राजा रावण द्वारा सीता हरण के साथ होती है।

4. किष्किन्धाकाण्ड

कथा दक्षिण भारत के किष्किन्धा के वनों में आगे बढ़ती है जहाँ राम का मिलन अपने परम भक्त हनुमान, सुग्रीव, और जामवन्त से होता है। सीता को लंका से वापिस लाने की योजना बनायी जाती हैं।

5. सुंदरकाण्ड

इस अध्याय में राम के लंका प्रस्थान का वर्णन है। अपने गीतकाव्य, हनुमान और उसकी सेना की प्रशंसा, और सीता की प्रसन्नता की सुन्दरता का बखान करने के कारण इस अध्याय का नाम सुंदरकाण्ड है। इसका पाठ भारत में रामायण से पृथक भी किया जाता है।

6. युद्धकाण्ड

नामानुरूप, इस अध्याय में राम और रावण की सेना के मध्य हुए भीषण युद्ध का वर्णन है। अंततः रावण मृत्यु को प्राप्त होता है और सीता को स्वतंत्र करा लिया जाता है।

7. उत्तरकाण्ड

अंतिम अध्याय राम के वन से अयोध्या वापिस आने के बाद के जीवन के बारे में है। इसमें सीता का त्याग, दो पुत्र लव और कुश का जन्म, सीता का पवित्र धरती में समा जाना, और राम का स्वर्गारोहण भी सम्मिलित हैं।

रामायण में प्रस्तुत दार्शनिक दृष्टि

1. रस

रस का अर्थ आनंद का वह भाव है जो किसी महाकाव्य, किसी कलाकृति और साहित्य के पढ़ने, सुनने अथवा देखने से श्रोता के अंदर उत्पन्न होता है। ये मानव आत्मा में भावनाओं के स्रोत होते हैं। रामायण का प्रधान रस करुण रस है। इस महाकाव्य का आरम्भ और अंत एक ही रस से होता है। राम और सीता के मिलन, बिछोह और पुनः मिलन में श्रृंगार रस का प्रस्फुटन होता है। वीर रस का प्रादुर्भाव युद्धकाण्ड में देखने को मिलता है। हास्य रस से सामना सूर्पणखा के प्रसंग में होता है। रौद्र रस रावण, अद्भुत रस हनुमान और शांत रस अनेक संतों के चरित्रों के प्रसंग में प्राप्त होता है।

2. नैतिकता से परिपूर्ण चरित्र

इस महाकाव्य में अनेक चरित्र उत्कर्ष चरित्र का प्रदर्शन करते हैं। लेखक उन चारित्रिक गुणों को सामान्य जनों के मन में डालना चाहता है। राम (मर्यादा पुरुषोत्तम) का चरित्र उच्चतम नैतिक स्तर का है। दशरथ पितृ प्रेम को उच्चतम स्तर पर लेकर जाते हैं। कौशल्या और सुमित्रा धैर्य और वात्सल्य प्रेम का प्रदर्शन करती हैं। सुमंत एक आदर्श मंत्री और मन्थरा आदर्श आस्थावान एवं समर्पित दासी है। हनुमान परम भक्त, लक्ष्मण आदर्श भाई और सीता आदर्श पत्नी हैं।

3. मानव केन्द्रित

रामायण में दैवीय गुणों को मानव में प्रतिस्थापित किया गया है। इस महाकाव्य में देवत्व अयोध्या राज्य के साधारण मानवों में भी प्रतिबिम्बित होती है। यह दिखाता है कि मानव भी दिव्य गुणों को धारण कर सकता है। *रामायण* की यह दृष्टि और किसी संस्कृत साहित्य में दिखाई नहीं देती। यह *रामायण* की इस भावना का मानवीय पक्ष भी है।

4. पुरुषार्थ और आश्रम

पुरुषार्थ भारतीय दर्शन की केन्द्रीय अवधारणा है। व्युत्पति की दृष्टि से पुरुषार्थ शब्द दो संस्कृत शब्दों; पुरुष और अर्थ से निकला है। जिसका अर्थ है जीवन का उद्देश्य। पुरुषार्थ चार हैं, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष। यह महाकाव्य अर्थ और काम को अति महत्व नहीं देता हालांकि इन्हें पूर्णतः नकारता भी नहीं है। *रामायण* में इन दोनों को धर्म के नियंत्रण में रखा गया है। राम, हनुमान, लक्ष्मण, विभीषण के चरित्रों में आलोकित धर्म को सर्वाधिक महत्व दिया गया है। *रामायण* धर्म की अधर्म पर विजय को दिखाती है। महाकाव्य पुनः मोक्ष के बारे में अधिक बात नहीं करता तथापि इसे निरस्त भी नहीं करता।

आश्रम भी सनातन धर्म के आधारभूत स्तम्भ हैं। हालांकि सभी आश्रमों का महाकाव्य में वर्णन किया गया है किन्तु गृहस्थ आश्रम धर्म, जिसका पालन राम अपने राज्य और पारिवारिक मामलों में करते हैं, पर मुख्य बल दिया गया है।

5. आलंकारिक / रूपकात्मक सुझाव

नैतिक और सौन्दर्यात्मक महत्व के अतिरिक्त प्रारम्भ से ही ऋषि और दार्शनिक *रामायण* कथा के रूपकात्मक अर्थ को बताने का प्रयास करते रहे हैं। उदाहरण के लिए, स्वामी विवेकानन्द इसका वर्णन अद्वैतिक सन्दर्भ में करते हैं और राम को परम ब्रह्म के रूप में देखते हैं। सीता को जीवात्मा के और लंका को मानव शरीर के अर्थ में समझते हैं। लंका नामक शरीर में

बंद जीवात्मा सदैव अपने परम ब्रह्म राम से मिलना चाहती है। इसमें राक्षस अर्थात् चारित्रिक दुर्गुण बाधा उपन्न करते हैं। विभीषण सत्त्व गुण के प्रतिनिधि हैं, रावण रजस् गुणों वाला हमारा अहंकार है, और कुम्भकरण जड़ता लिए तमस् गुण धारक है। हनुमान को जीव के गुरु अथवा जीवनदायी बल, जिसके द्वारा आत्मा ईश्वर को स्मरण करती है और उत्तर में ईश्वर रावण रूपी अहम् को मार कर जीवात्मा को बचाती है, के रूप में देखते हैं।

2. *महाभारत*

रामायण के बाद दूसरा महान महाकाव्य *महाभारत* है। *महाभारत* अक्षरशः एक युद्ध को सूचित करने वाला नाम है जो कुरुक्षेत्र में लगभग 5000 वर्ष पूर्व लड़ा गया था। यदि *रामायण* संस्कृत का आदिकाव्य है तो *महाभारत* भारत का पहला ऐतिहासिक महाकाव्य है। *द इलस्ट्रेटिड एनसाईक्लोपीडिया ऑफ हिंदूइज्म* के अनुसार, *महाभारत* मानव इतिहास का सबसे लम्बा महाकाव्य अथवा ग्रन्थ है। इसमें एक लाख से भी ज्यादा श्लोक और 1.8 मिलियन शब्द हैं। यह *ओडेसी* और *इलियड* दोनों की लम्बाई की तुलना में लगभग दस गुना बड़ा है। डब्लू जे जॉनसन जैसे विद्वानों ने इसकी तुलना *बाइबिल, कुरान,* और होमर तथा शेक्सपियर की साहित्यिक रचनाओं से भी की है। भारतीय परम्परा में इसे पांचवा वेद अथवा विश्वकोश (वैश्विक ज्ञान की निधि) भी कहा जाता है।

महाभारत की संरचना

जैसा की ऊपर बताया गया है, *महाभारत* में एक लाख से ज्यादा श्लोक हैं। इसकी रचना व्यास ने गणेश की सहायता से की थी। इसके अध्यायों में कहानियों के अंदर कहानियां हैं। इसमें अठारह पर्व हैं। फिर पर्व में उपपर्व हैं। सम्पूर्ण पर्व विन्यास निम्नलिखित है,

1. **आदिपर्व**– नामानुसार, यह *महाभारत* की उत्पत्ति, भारत और भृगु की संतानों, का वर्णन करता है।
2. **सभापर्व**– यह पर्व इन्द्रप्रस्थ की सभा, युधिष्ठिर द्वारा सम्पादित यज्ञ, द्यूत क्रीडा, द्रोपदी वस्त्रहरण और पाण्डव वन निर्यासन का वर्णन करता है।
3. **वनपर्व**– यह पांडवों के 12 वर्षों के वनवास का वर्णन करता है।
4. **विराटपर्व**– इसमें पांडवों के विराट राज्य में बिताये गए अज्ञातवास का वर्णन है।
5. **उद्योगपर्व**– उद्योग यानि प्रयास। इसमें कौरव और पाण्डव के मध्य युद्ध को रोकने के लिए किये गए प्रयासों का वर्णन है।
6. **भीष्मपर्व**– इसमें युद्ध प्रारम्भ होने और युद्ध भूमि में पितामह भीष्म के शौर्य और वीरता का प्रदर्शन और तत्पश्चात् उनका बाण शैया पर जाने का वर्णन किया गया है।
7. **द्रोणपर्व**– यह द्रोणाचार्य के युद्ध और उनकी मृत्यु का वर्णन करता है।
8. **कर्णपर्व**– यह कुंती पुत्र कर्ण के वीरतापूर्ण युद्ध कौशल का वर्णन करता है।
9. **शल्यपर्व**– इसमें शल्य के सेनापति बनने के उपरांत युद्ध के अंतिम दिन का वर्णन किया गया है। इसी पर्व में भीम और दुर्योधन के अंतिम गदा युद्ध का भी वर्णन मिलता है।
10. **सुप्तिकपर्व**– इस पर्व में यह बताया गया है कि कैसे अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने पांडवों की बची हुई सेना की सोते समय हत्या कर दी और पाण्डव पक्ष के केवल सात योद्धा और कौरव पक्ष के तीन योद्धा ही जीवित बच पाए।

11. **स्त्रीपर्व**– इस पर्व में गांधारी के विलाप और कृष्ण को कौरवों के विनाश को लेकर दिए गए श्राप का वर्णन है।

12. **शांतिपर्व**– यह पर्व भीष्म के अभिषेक को दिखता है।

13. **अनुशासनपर्व**– इसमें भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिए गए राजधर्म संबंधी उपदेशों (अनुशासन) का संकलन है।

14. **अश्वमेधिकापर्व**– यह पर्व युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ, अर्जुन की विजय यात्रा और कृष्ण के द्वारा अर्जुन को अनु–*गीता* का ज्ञान देने का वर्णन करता है।

15. **आश्रम्वासिकापर्व**– इसमें धृतराष्ट, गांधारी और कुंती की हिमालय के वनों में मृत्यु का वर्णन है।

16. **मौसलापर्व**– इसमें गांधारी के श्राप के परिणामस्वरूप कृष्ण के यदुवंश का विनाश दिखाया गया है।

17. **महाप्रस्थानिकपर्व**– यह पर्व द्रोपदी सहित पांच पांडवों के हिमालय गमन का वर्णन करता है।

18. **स्वर्गारोहणपर्व**– इसमें पांडवों के स्वर्गारोहण का वर्णन किया गया है।

इन आठारह पर्वों के अतिरिक्त *महाभारत* में हरिवंश नाम से एक अध्याय परिशिष्ट के रूप में संलग्न है। इस अध्याय में मुख्य अठारह अध्यायों में वर्णित नहीं किये गए कृष्ण के जीवन का वर्णन किया गया है।

महाभारत में प्रस्तुत दार्शनिक दृष्टि

महाभारत की रचना मनोरंजन के लिए नहीं बल्कि यह सनातन धर्म के आधारभूत दार्शनिक प्रसंगों को प्रदर्शित करने के लिए की गयी है। इसमें प्रस्तुत कुछ आधारभूत दार्शनिक प्रसंग निम्न हैं:

1. पुरुषार्थ

पुरुषार्थ के अर्थ एवं महत्व पर ऊपर पहले ही प्रकाश डाला जा चुका है। *महाभारत* में भी उच्च पुरुषार्थ प्रदर्शित करने वाले चरित्रों का चित्रण किया गया है। उदाहरण के लिए, कर्ण, अर्जुन, कृष्ण, भीम, भीष्म आदि का जीवन उच्च पुरुषार्थ के अनुरूप जिया जाने वाला जीवन है। युधिष्ठिर को धर्मराज के रूप में चित्रित किया गया है। पांडवों के स्वर्गारोहण का प्रसंग जीवन के अंतिम उद्देश्य के रूप में मोक्ष के महत्व को प्रदर्शित करता है।

2. कर्म सिद्धांत

महाभारत की अनेक कहानियां कर्म सिद्धांत के महत्व और प्रभाव की व्याख्या करती हैं, जिनका सीधा अर्थ है कि जैसा कर्म करोगे वैसा फल मिलेगा। यह कर्म क्षेत्र में कारणता का अनुप्रयोग है। उदाहरणार्थ, दुर्योधन और अन्य कौरव पक्ष के लोग द्रोपदी के वस्त्रहरण जैसे अक्षन्य पापपूर्ण कर्म का फल युद्ध में पराजय और मृत्यु के रूप में भोगते हैं। महान आचार्य जैसे कि भीष्म भी अधर्म का पक्ष लेने का फल भुगतते हैं। कर्म सिद्धांत से ईश्वरीय कृष्ण भी नहीं बच पाते और गांधारी के श्राप के कारण सम्पूर्ण यदुवंश के सर्वनाश का दंश झेलते हैं। अतः, कर्म सिद्धांत *महाभारत* के सम्पूर्ण आख्यान का एक मात्र नियामक तत्व है।

3. *भगवद् गीता* और उसका दर्शन

महाभारत की दार्शनिक दृष्टि का उद्भव भीष्म पर्व में *भगवद्गीता*, युद्ध क्षेत्र में अर्जुन को सम्प्रेषित ईश्वर के गीत, के रूप में प्रतिफलित होता है। इसमें आठ अध्यायों में संकलित 700 श्लोक हैं।

भगवद्गीता वेदान्त परम्परा का एक मुख्य ग्रन्थ है और वेदान्त दर्शन बीजरूप में इसमें पाया जाता है। उदहारण के लिए, आदि शंकराचार्य ने ज्ञान–मार्ग को इसी से लिया था। वैष्णवी विद्वानों जैसे कि रामानुज, निम्बार्क, मध्व, और वल्लभ ने भक्ति मार्ग को इसी से प्राप्त किया। तिलक ने निष्काम कर्म के महत्व को *गीता* से ही सीखा था। समान रूप से, गाँधी और विवेकानन्द ने समन्वय योग– शुद्ध ज्ञान से प्राप्त कर्म की समरसता का मार्ग और ईश्वर के सन्मुख समर्पण, दर्शन का प्रतिपादन *गीता* दर्शन के आधार पर ही किया है।

वर्ण और आश्रम धर्म की सामाजिक संरचना के दर्शन को सांस्थानिक रूप भगवद्*गीता* ने ही दिया है। जब अर्जुन युद्ध भूमि में युद्ध से विमुख हो सन्यासी जीवन को अपनाने की बात करता है तब कृष्ण उसे युद्ध को त्यागने की अपेक्षा कर्म मार्ग पर चलने की शिक्षा देते हैं। सन्यास मार्ग पर जाना उसके स्वधर्म (क्षत्रिय धर्म) के विपरीत है। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि स्वधर्म का पालन करते हुए मर जाना किसी अन्य धर्म के साथ जीवित रहने से श्रेयस्कर है।

अतः, भगवद्*गीता* कृष्ण वाणी के माध्यम से वेद, उपनिषद् और पुराण में प्रतिपादित दर्शन का सारगर्भित रूप प्रदर्शित करती है।

4. आलंकारिक / रूपकात्मक सुझाव

कुछ दार्शनिक जैसे कि महात्मा गाँधी का विचार है कि *महाभारत* का युद्ध ऐतिहासिक घटना नहीं है। यह व्यास के द्वारा प्रस्तुत एक उपमा है जिसके माध्यम से ये हिन्दू धर्म के कुछ निश्चित केन्द्रीय उपदेशों, जैसे कि वर्ण और आश्रम व्यवस्था पर आधारित निष्काम कर्म, को प्रतिपादित करना चाहते थे। गांधी के अनुसार, *महाभारत* प्रत्येक व्यक्ति की मनोदशा को प्रस्तुत करता है। कौरव तामसिक बल और पाण्डव सात्विक बल का प्रतिनिधित्व करते हैं। कृष्ण का रथ मानव अवस्था को प्रदर्शित करता है जहाँ अर्जुन एक जीवात्मा, घोड़े इन्द्रियां और कृष्ण, सारथि परम ब्रह्म हैं। अर्जुन का मानसिक द्वन्द वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति विशेष का मानसिक द्वन्द्व है और सुख का मार्ग अपने स्वधर्म का पालन करना है। यद्यपि, गाँधी हिंसा की निरर्थकता पर बल देते हैं क्योंकि *महाभारत* का युद्ध शांति नहीं बल्कि पश्चाताप और ग्लानि लेकर आता है। किन्तु साथ ही ये कृष्ण की प्रज्ञा के रूप में अवतरित होने की पूजा करते हैं और *भगवद्गीता* की अत्यधिक प्रशंसा करते हैं। उनके शब्दों में,

"*भगवद्गीता* सबकी माँ है। यह किसी को निराश नहीं करती। उसके दरवाजे हर खटखटाने वाले के लिए खुले हैं। *भगवद्गीता* का सच्चा भक्त कभी निराश नहीं होता। जो *गीता* को जान लेता है वह सदैव चिरस्थायी आनन्द और शांति को प्राप्त कर लेता है। तथापि, यह शांति और आनन्द संदेह कर्ता और दम्भी ज्ञानी को प्राप्त नहीं होता। यह केवल ऐसी विनम्र आत्मा, जो पूर्ण आस्था और एकत्व मन से उसकी पूजा करता है, को ही प्राप्त होता है"।

3.4 दार्शनिक प्रतिउत्तर

महाकाव्यों का दर्शन और भारतीय संस्कृति एक दुसरे से गुंथे हुए हैं। हो सकता है कि अनेक भारतीय जन मानस *महाभारत* और *रामायण* के बारे में न जानते हों लेकिन उनके जीवन के आधारभूत दार्शनिक सिद्धांत मूलतः इन्हीं महाकाव्यों की दार्शनिक शिक्षाओं से संचालित होते हैं। प्रायः *रामायण* जैसे महाकाव्यों की लौकिक भाषाओं में पुनर्रचना की जाती रही है। इसका एक उदाहरण तुलसीदास रचित रामचरितमानस है, जिसने लाखों लोगों के हृदय और भावनाओं में गहरी जगह बनायी है। इन दो महाकाव्यों की दार्शनिक दृष्टि और उनके प्रभाव का सामान्य चित्रण निम्नवत् है;

1. महाकाव्य की उत्पत्ति

विद्वानों के अनुसार महाकाव्यों की उत्पत्ति करुण रस से हुई है। उदाहरण के लिए, जब वाल्मीकि ने एक प्रेम में लिप्त चिड़िया की मृत्यु और जीवत बची उसकी साथी चिड़िया को उसके वियोग में विलाप करते हुए देखा तो उन्हें अत्यधिक दया और दुःख का बोध हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने एक श्लोक लिखा। यह श्लोक गीतमय, छन्दमय और काव्यात्मक था। इसके उपरांत ब्रह्मा ने स्वयं उन्हें *रामायण* (प्रथम महाकाव्य) की रचना करने का सुझाव दिया। अतः, एक महान काव्य की उत्पत्ति संताप की अवस्था में ही होती है जैसा कि स्वयं वाल्मीकि जी ने कहा है– शोकः श्लोकत्वमागताः। इस श्लोक– यस्या शोकः श्लोकत्वमागताः में कालिदास भी यह विचार स्वीकार करते हैं।

2. आनन्द की खोज

महाकाव्य का एक अन्य उद्देश्य मानव में कुछ निश्चित रसों को उत्पन्न करना है। महाकाव्य और भारतीय दर्शन स्वभावतः उद्देश्यात्मक हैं जिनका मूल उद्देश्य आध्यात्मिक आनंद और दुःख से स्थायी निवृत्ति है। इस अर्थ में, महाकाव्य प्रधान रस जैसे कि करुण, वात्सल्य, श्रृंगार आदि से आरम्भ होते हैं लेकिन इनका अंत भक्ति से उत्पन्न सर्वोच्च आनन्द भागवदानन्द की प्राप्ति से हो सकता है। इसलिय रस को ब्रह्मानन्द सहोदरः भी कहा जाता है।

3. वर्णाश्रम और पुरुषार्थ

सभी महाकाव्य एक मत से वर्णय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद, और आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास, आधारित सामाजिक संरचना को स्वीकार करते हैं। ये सभी सामान्य मानव जीवन के विभिन्न महत्वपूर्ण घटक और अवस्थाएँ हैं। पुनः, इन अवस्थाओं के दौरान मानव को चार पुरुषार्थो, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, के अनुसार जीवन यापन करना होता है। ये तत्व ही भारतीय दर्शन जैसे कि वैशेषिक, मीमांसा, और वेदान्त दर्शन का आध ाार हैं।

4. धर्म और अधर्म

महाकाव्य का एक सन्देश अधर्म पर धर्म की विजय की स्थापना करना है। इसके माध्यम से ये मानव को केवल धर्मानुसार जीवन जीने का सन्देश देते हैं। महाकाव्यों का एक मत से उदघोष है– यताधर्मः ततो जयः अर्थात् जहा धर्म है वहां विजय है। *रामायण* में यह रावण की मृत्यु और राम और विभीषण के राज्यभिषेक के रूप में अवलोकित होता है। समान रूप से, *महाभारत* में, पांडवों की कौरवों पर विजय और युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के माध्यम से धर्म स्थापना की गयी है।

5. *भगवद्गीता* और इसका भारतीय दर्शन पर प्रभाव

एक बार *भगवद्गीता* की प्रशंसा करते हुए एक जर्मन दार्शनिक, वेलहेम योन हम्बोल्ट, ने इसे "सर्वाधिक सुन्दर, संभवतः किसी भी ज्ञात भाषा में उपस्थित एक मात्र सच्चा दार्शनिक काव्य। संभवतः विश्व के सम्मुख प्रस्तुत की जाने योग्य सर्वाधिक गूढ़ और महान कृति" कहा है। यह बात सामान्य रूप से भारतीय दर्शन पर और विशेष रूप से वेदांत दर्शन पर पड़े इसके प्रभाव के बारे में भी सत्य है। *भगवद्गीता* वेदांत की प्रस्थान त्रयी (तीन मुख्य स्रोत) में सम्मिलित है। वेदांत के सभी दार्शनिक सम्प्रदाय चाहे यह शंकर का केवलाद्वैत, रामानुज का विशिष्टाद्वैत, या फिर मध्व का द्वैत हो सभी अपने दर्शन की उत्पत्ति का श्रोत *भगवद्गीता* को मानते हैं।

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्य : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का उपयोग कीजिये।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिये।

1. नैतिक आदर्शों के रूप में *रामायण* के चरित्रों पर टिप्पणी कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

2. *भगवद्गीता* के दर्शन का संक्षेप में वर्णन कीजिये।

.....

.....

.....

.....

.....

3.5 सारांश

हमने देखा कि कैसे भारतीय काव्य का उच्चतम शिखर बिंदु *रामायण* और *महाभारत* महाकाव्यों के रूप में फलित होता है। हमने यह भी देखा कि कैसे ये दोनों महाकाव्य न केवल अपनी विशालता और काव्यात्मक गुणों के कारण बल्कि अपने दार्शनिक विन्यास के कारण भी भव्य और शौर्यपूर्ण हैं। *रामायण* के नायक अकेले राम हैं वहीं *महाभारत* में अनेक नायक अर्जुन, कृष्ण, युधिष्ठिर आदि, हैं। ये सभी नायक आदर्श रूप में साहसी, प्रज्ञावान, और समर्पण आदि गुणों को धारण करते हैं। अंत में, सदैव धर्म की अधर्म के ऊपर विजय होती है। *रामायण* और *महाभारत* महाकाव्यों का मुख्य महत्व इस अर्थ में है कि यह दर्शन के गहरे, अमूर्त और कभी कभी कड़वे सत्यों को काव्यात्मक, जो कि आम जन के लिए आसानी से समझने और ग्रहण करने योग्य होता है, ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

3.6 कुंजी शब्द

उद्देश्यात्मकता : वस्तुओं की एक विशिष्ट उद्देश्यपरकता के सन्दर्भ में व्याख्या करना।

काव्य : प्राचीन भारत की उच्च संस्कृत साहित्यिक गुणों वाली कविता।

छंद : यह एक प्राचीन भारत में प्रयुक्त होने वाली चतुष्पदी काव्यात्मक परम्परा है।

पुरुषार्थ : इससे तात्पर्य है– मानव के सद्गुण और कर्तव्य। ये चार हैंय धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष।

बिटिफिस्म : यह यह विचार है कि जीवन का परम लक्ष्य उच्चतम आध्यात्मिक आनन्द को प्राप्त करना है।

रस : यह किसी साहित्यिक और कलात्मक कृति से मानव मन में उत्पन्न होने वाला सौन्दर्य अथवा आनन्द का भाव है।

वेदान्त : यह प्रस्थानत्रयी: उपनिषद्, *भगवद्गीता*, और *ब्रह्मसूत्र*, पर आधारित दार्शनिक शिक्षाओं को प्रस्तुत करता है।

महाकाव्य : प्राचीन भारत की उच्च संस्कृत साहित्यिक गुणों वाली भव्य और विशाल कविता।

3.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

कीथ, ए. बी. *ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर.* देल्ही: मोतीलाल बनारसीदास, 1993.

गनेरी, जे. *द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ इंडियन फिलॉसोफी.* देल्ही: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2017.

गुप्तादास, एस. एन. *ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलॉसोफी.* देल्ही: मोतीलाल बनारसीदास, 1991.

डायसन, पॉल. *द फिलॉसोफी ऑफ उपनिषद्.* न्यूयॉर्क: कोसिमो क्लासिक्स, 2010.

बुक्क, विलियम. *महाभारत.* देल्ही: मोतीलाल बनारसीदास, 2000.

मतिलाल, बी. के. *एथिक्स एंड एपिक्स: द कलेक्टेड एस्सेस ऑफ बिमल कृष्ण मतिलाल* वोल्यूम II, (एडि.) जॉनार्डन गनेरी. देल्ही: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2015.

राधाकृष्णन्, एस. *इण्डियन फिलॉसोफी,* सेकंड एडिशन. लन्दन: जॉर्ज एलन एंड अनविन, 1931.

राधाकृष्णन्, एस. *द भगवद्गीता.* नोएडा: हार्पर कोलिन्स पब्लिशर्स इंडिया, 2011.

वाल्मीकि. *रामायण,* इंग्लिश ट्रांसलेशन. गोरखपुर: *गीता* प्रेस, 2002

शर्मा, सी. डी. *ए क्रिटिकल सर्वे ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी.* देल्ही: मोतीलाल बनारसीदास, 1990.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

दासगुप्त, सुरेन्द्र नाथ. *भारतीय दर्शन का इतिहास* (पांच भाग). अनुवाद– कलानाथ शास्त्री एवं सुधीर कुमार. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1977.

राधाकृष्णन, एस. *भारतीय दर्शन* (दो खण्ड). अनुवाद– नन्दकिशोर गोभिल. दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स, 2015.

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. महाकाव्य के लिए अंग्रेजी में प्रयुक्त शब्द 'एपिक' का उद्भव ग्रीक शब्द 'एपिका' और लैटिन शब्द 'एपिकस' से हुआ है जिनका अर्थ होता है, कथा, कहानी, उपदेशात्मक कथन, कहावत अथवा बड़ी लम्बी कविता। काव्य कवि की रचना है (कविः कर्मा काव्यं) और काव्य को पाठक/दृष्टा के अन्दर रस उत्पन्न करने में सक्षम होना चाहिए। इसमें सौन्दर्यात्मक बोध भी समाहित होना चाहिए। काव्य अपनी भव्यता और विशालता के आधार पर महाकाव्य कहलाता है। दण्डी के अनुसार, काव्य का आरम्भ परमानन्द उकेरने (आशीर्वादात्मक), दैवीय के प्रति समर्पण भाव (नमस्कारात्मक) से होना चाहिए और विषय वस्तु का सूचक (वस्तुनिर्देशात्मकता) होना चाहिए। इसकी कथावस्तु पूर्णतः काल्पनिक नहीं होनी चाहिए बल्कि प्राचीन एतिहासिक अभिलेखों अथवा पुराणिक परम्परा पर आधारित होना चाहिए।

2. संस्कृत साहित्य में काव्य की उत्पत्ति ऋग्वेद के प्रारंभिक काव्यात्मक सूक्तों में हुई है। उषा सूक्त वैदिक काव्य का एक उत्कृष्ट उदहारण है। वेदों के बाद के विकासकाल में, जैसे कि ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् में भी, काव्य काव्यात्मक और संवाद शैली में बिखरा हुआ था। इसलिए, वेदों में काव्य अथवा महाकाव्य बीज रूप में उपस्थित था हालांकि यह अभी वहाँ पूर्णतः अंकुरित नहीं हो पाया था। महाकाव्य के रूप में काव्य वास्तविक अर्थों में वाल्मीकि *रामायण* और व्यास के *महाभारत* के साथ शुरू होता है। बाद में यह परम्परा अश्वघोष, कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि विद्वानों के द्वारा आगे बढ़ाई गयी।

बोध प्रश्न 2

1. व्युत्पत्ति की दृष्टि से *रामायण* शब्द दो संस्कृत शब्दों से मिलकर बना है– राम और आयण जिसका अर्थ होता है राम का पथ अथवा स्थान। इस महाकाव्य में अनेक चरित्र उत्कृष्ट चरित्र का प्रदर्शन करते हैं। लेखक उन चारित्रिक गुणों को सामान्य जनों के मन में डालना चाहता है। राम (मर्यादा पुरुषोत्तम) का चरित्र उच्चतम नैतिक स्तर का है। दशरथ पितृ प्रेम को उच्चतम स्तर पर लेकर जाते हैं। कौशल्या और सुमित्रा धैर्य और वात्सल्य का प्रदर्शन करती हैं। सुमंत एक आदर्श मंत्री और मन्थरा आदर्श आस्थावान दासी है। हनुमान परम भक्त, लक्ष्मण आदर्श भाई और सीता आदर्श पत्नी है।

2. *भगवद्गीता महाभारत* के समय के दर्शन को प्रस्तुत करती है। यह ज्ञान, कर्म, और भक्ति योग के दर्शन का प्रतिपादन करती है। आदि शंकराचार्य ने ज्ञान–मार्ग को इसी से लिया था। वैष्णवी विद्वानों जैसे कि रामानुज, निम्बार्क, मध्व, और वल्लभ ने भक्ति मार्ग को इसी से प्राप्त किया। तिलक ने निष्काम कर्म के महत्व को *गीता* से ही सीखा था। यह वर्ण और आश्रम धर्म पर आधारित सामाजिक संरचना के दार्शनिक आधार का भी प्रतिपादन करती है।

इकाई 4 नास्तिक एवं आस्तिक दर्शन[4]

रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 परिचय

4.2 अवलोकन

4.3 मूल मुद्दों/सम्प्रत्ययों पर अन्तर्दृष्टि

4.4 दार्शनिक प्रतिउत्तर

4.5 सारांश

4.6 कुंजी शब्द

4.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में, निम्नलिखित विषयों की समझ विकसित होगी, ऐसी आशा है:

- दर्शन पद का अर्थ
- भारतीय दर्शन में आस्तिक और नास्तिक पदों का अर्थ
- भारतीय दर्शन प्रणालियों/सम्प्रदायों के वर्गीकरण का आधार
- पुरुषार्थ की धारणा
- भारतीय दार्शनिक साहित्य की लेखन–शैली
- आस्तिक दर्शनों का अवलोकन
- नास्तिक दर्शनों का अवलोकन

4.1 परिचय

भारतीय दर्शन परम्परा में, कोई भी दार्शनिक अथवा दार्शनिक प्रणाली किसी न किसी भारतीय दर्शन सम्प्रदाय से सम्बद्ध होने के कारण विभक्तरूप से नहीं पाया जाता। इस सम्बद्धता का आधार विचारक की दर्शन नाम से ख्यात बोध की किसी विशिष्ट प्रणाली के प्रति झुकाव में पाया जाता है। दर्शन पद की व्युत्पत्ति दृक् धातु से हुई है, जिसका तात्पर्य है, अन्वीक्षण करना, दृष्टि धारण करना अथवा/और विश्व (अन्य) एवं मनुष्य सामान्य

[4] श्री अजय जायसवाल, विद्या वाचस्पति शोधक दर्शन केन्द्र जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली, अनुवाद– श्री आशुतोष व्यास, परामर्शदाता (दर्शनशास्त्र), एसोआईटीएस, इग्नू

अवलोकनात्मक समझ का प्रतिनिधित्व करना। 'विश्व के बारे में दृष्टि/मत' सम्बन्धी दर्शन की यह प्राचीन धारणा ग्रीक एवं जर्मन धारणाओं क्रमशः कोस्मोथेरिआ एवं वेल्टन्स्चौंग से समतुल्य है। भारतीय दर्शन परम्परा दो समानान्तर धाराओं, आस्तिक एवं नास्तिक को रखती है, जो क्रमशः वैदिक एवं अवैदिक ग्रन्थों पर आधारित हैं। आस्तिक दर्शन परम्परा के अन्तर्गत् छह दर्शन (विचार–प्रणालियां); न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, और वेदान्त हैं। नास्तिक दर्शन परम्पराके अन्तर्गत् बौद्ध, जैन, और चार्वाक प्रणालियां हैं। प्रस्तुत अध्याय में, हम भारतीय दर्शन प्रणालियों के वर्गीकरण का अर्थ एवं आधार, और दोनों परम्पराओं की प्रमुख दर्शन प्रणालियों की प्रमुख अवधारणाओं के बारे में समझ विकसित करेंगे।

4.2 अवलोकन

लोकरूढ़ अर्थ में, आस्तिक एवं नास्तिक पद क्रमशः ईश्वर–विश्वासी एवं ईश्वर–अविश्वासी का निदर्शन करते हैं। किन्तु, इसके विपरीत, भारतीय दर्शन के सन्दर्भ में आस्तिक एवं नास्तिक पद समग्रतः भिन्न भाव रखते हैं। शब्दार्थ चिन्तन की दृष्टि से, ये पद किसी के होने (अस्ति) अथवा न होने (न–अस्ति) को निदर्शित करते हैं। यहां, विधेय सत्ता के कर्त्तारूप में वेदों या वैदिक ज्ञान की पवित्रता/अखण्डता है। अतः, आस्तिक का तात्पर्य हुआ वेद की प्राधिकारिता (या प्रामाण्य) को मानना जबकि नास्तिक का तात्पर्य हुआ वेद की प्राधिकारिता को नकारना या उसके प्रति उदासीनता।

अब, इस वर्गीकरण के आधार को समझने के लिए हमें भारतीय चिन्तन धारा(ओं) के मूलभूत अथवा प्राथमिक संकल्पनाओं और पद्धतियों को समझने की आवश्यकता है। सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन का एक अधिभावी सिद्धान्त उसका मानव–केन्द्रित होना है। भारतीय चिन्तन धाराओं का उद्देश्य मानव के दुःखों की समाप्ति और उच्चतम सम्भाव्यरूप में सुख या आनन्द की उत्तरोत्तरता प्राप्त करना है। इस भाव से, भारतीय दर्शन को सारतः निराशावादी और उद्देश्यपरक समझा जा सकता है। यह केवल प्रेरणा का एवं विविध मार्गों का स्रोत है।

वेद, जिसकी व्युत्पत्ति विद् धातु से हुई है, का तात्पर्य है, प्रज्ञा/बोध के प्रकाश का ज्ञान। वेद भारतीय दर्शन के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं और उच्चतम पवित्रता वाले ग्रन्थ हैं, क्योंकि ये ऋषि नाम से अभिहित दृष्टाओं को ईश्वर द्वारा उद्बोधित किये गये हैं। अपितु, कुछ सम्प्रदाय वेद को अपौरुषेय मानते हैं: जिसका तात्पर्य है उनका कोई कर्त्ता नहीं है और ये शुद्धतम ज्ञान (वाले) और उच्चतम उपासना/उपास्य (के) ग्रन्थ हैं। किसी भी सन्दर्भ में, जिनका यह विश्वास है कि वेद परमसत्य को धारण करने वाले और/या इसीलिए मनुष्य को सर्वदा के लिए दुःख से निवृत्त करने की सामर्थ्य वाले हैं, आस्तिक दर्शन कहलाते हैं। परम्परागत् रूप से, आस्तिक दर्शन के अन्तर्गत् छह प्रणालियां; न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, और वेदान्त हैं। यद्यपि ये विरोधी मतों और पद्धतियों को धारण करते हैं, फिर भी एकसमान रूप से वेद की प्राधिकारिता को स्वीकारते हैं।

वहीं, वैदिक ज्ञान प्रणाली से दूरी रखने वाले नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। इनमें भी सूक्ष्म, अपितु महत्वपूर्ण अन्तर है। एक वर्ग में जैन और बौद्ध दर्शन को रखा जा सकता है। उनका भी यह तो मानना है कि परमसत्य या निर्वाण (या कैवल्य या मोक्ष) प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए वेदों का अनुसरण अपरिहार्य शर्त नहीं है। इसका सम्भावित कारण या तो वेदों का निष्फल और दूषित पद/चरण/अवस्था हो सकता है या फिर वेदों के प्रति झुकाव के बिना मानव की समस्याओं के दार्शनिकीकरण एवं समाधान के लिए नये प्रारम्भ का

उत्साह। अतः, हम पाते हैं कि प्रारम्भ में जैन और बौद्ध दर्शन वेदों के प्रति अधिक या कम उदासीन थे और अपनी चिन्ताओं को सत्य और आनन्द की खोज तक सीमित किए हुए थे। तदनुसार, बौद्ध और जैन के आदर्श क्रमशः निर्वाण और कैवल्य के रूप में विकसित हुये।

नास्तिक दर्शन का अन्य वर्ग चार्वाक के अपवादित मामले को रखता है। उन्होंने पूरी तरह से वेदों की प्राधिकारिता को नकार दिया। ये जैन और बौद्धों के भी आलोचक थे। चार्वाक दर्शन का झुकाव किसी भी तत्त्वमीमांसीय प्राक्कल्पनाओं की ओर नहीं था। उनके अनुसार, कोई मोक्ष, निर्वाण या कैवल्य नहीं होता है। पुनर्जन्म और कर्म–सिद्धान्त की असम्भावना है, अतः जीवन का एकमात्र लक्ष्य सुख की अधिकतम प्राप्ति है। उनके अनुसार, काम (सुख) परमपुरुषार्थ (मानव द्वारा प्राप्तव्य उच्चतम) है। सत्तामीमांसा की दृष्टि से, चार्वाक भौतिकवादी दर्शन है, जो ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, रीति–रिवाजों के अस्तित्व, इत्यादि को नकारता है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि समस्त दर्शनों में अधिभावी सिद्धान्त समान है, मानव दुःख की समाप्ति या परम आनन्द या सुख की प्राप्ति। तो भी, ये विशिष्ट ग्रन्थों के प्रति झुकाव और सत्य एवं सुख की अपनी खोज के सन्दर्भ में मतभेद रखते हैं। यह बिन्दु अगले खण्ड में समस्त प्रमुख दर्शनों के मूल सम्प्रत्ययों की संक्षिप्त व्याख्या के साथ आगे व्याख्यायित किया जायेगा।

बोध प्रश्न 1

ध्यातव्य : क) उत्तर के लिए प्रदान किए गये अवकाश का उपयोग करें।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों का मिलान कीजिए।

1. आस्तिक और नास्तिक दर्शन से क्या तात्पर्य है?

.....

.....

.....

.....

.....

2. नास्तिक दर्शन परम्परा में, चार्वाक दर्शन जैन दर्शन एवं बौद्ध दर्शन से किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

4.3 मूलभूत मुद्दों/सम्प्रत्ययों पर अन्तर्दृष्टि

हमने देखा कि कैसे भारत में कोई भी दार्शनिक विभक्तरूप में प्रकट नहीं होता। यह दर्शन के रूप में प्रसिद्ध निश्चित समुच्चय की दार्शनिक अभिरुचियों के प्रति झुकाव रखता है।

आस्तिक और नास्तिक भारतीय दर्शनों के दो परम्परागत वर्गीकरण हैं। हमने इस वर्गीकरण के आधार यानि वेदों की प्राधिकारिता पर भी विचार किया। परन्तु इस वर्गीकरण की समानता और असमानता पर गहराई से विचार आवश्यक है, जो निम्नवत् है;

अ – पुरुषार्थ की धारणा–

आस्तिक और नास्तिक वर्गीकरण को अधिक स्पष्टता से समझने के लिए पुरुषार्थ की प्राचीन दार्शनिक विचार को समझना आवश्यक है। पुरुषार्थ, संस्कृत पदों पुरुष और अर्थ से मिलकर बना है, जिसका तात्पर्य है पुरुष (मनुष्य) का लक्ष्य। यह मनुष्य की उद्देश्यपरक व्याख्या है। परम्परागत रूप से, वैदिक दर्शन के अनुसार, चार पुरुषार्थ हैं, धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, जिनका तात्पर्य क्रमशः है, उचित कर्म, सम्पदा, इन्द्रिय–तुष्टि, और परमपद प्राप्ति। नास्तिक दर्शनों के परस्पर वर्गीकरण का आधार पुरुषार्थ के विचार के बारे में उनके विरोधी मत हैं।

आ – आस्तिक दर्शनों की समानताएं एवम् असमानताएं–

सभी आस्तिक दर्शन वेदों की प्राधिकारिता स्वीकार करते हैं। ये सभी चारों पुरुषार्थों को स्वीकारते हैं और मोक्ष को परम पुरुषार्थ मानते हैं। किन्तु, ये मोक्ष के लिए भिन्न–भिन्न पद (अर्थ सहित), अपवर्ग, निःश्रेयस, समाधि, तुरीयावस्था इत्यादि का प्रयोग करते हैं।

सभी आस्तिक दर्शनों में कई मामलों में भेद भी हैं। जैसाकि पूर्व में उद्धृत किया गया है कि ये सभी परम पुरुषार्थ के बारे में भिन्न–भिन्न नाम सहित अलग–अलग सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं। तत्त्वमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, और की दृष्टि से वैदिक ज्ञान और वेदों के विवेचन में ये भिन्न–भिन्न मत रखते हैं। ये दर्शन अपनी विषय–वस्तु के आधार पर भी असमान हैं। उदाहरणतः, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, और मीमांसा क्रमशः ब्रह्माण्ड–विद्या, मनोवैज्ञानिक, तार्किक (अनुमान), भौतिकीय, और वैदिक विधि–निषेध (भाषा की व्याख्या के नियम) में विशिष्टता रखते हैं।

इ – नास्तिक दर्शनों में समानताएं एवं असमानताएं–

सभी नास्तिक दर्शन वेदों के प्रति किसी भी तरह का झुकाव न रखने के कारण समान हैं। किन्तु, वेदों की आलोचना की मात्रा की दृष्टि से भेद रखते हैं। जैन और बौद्ध दर्शन, वेदों का आंशिकरूप से निषेध करते हैं, इस प्रकार ये वेदों की रचनात्मक या कोमल आलोचना वाले हैं। चार्वाक, दर्शन सिरे से कठोरतापूर्वक वेदों की प्राधिकारिता और उसकी समग्र दृष्टि को नकार देता है। चार्वाक दर्शन केवल दो पुरुषार्थों अर्थ और काम को मानव–अस्तित्व के परम लक्ष्य घोषित करता है। जैन और बौद्धमत, पराभौतिक आधार रखते हैं। जीवन के प्रति सुखवादी अभिरुचि के विपरीत, ये निवृत्ति के तत्त्व अपने दर्शन में रखते हैं। तदनुसार, हम कह सकते हैं कि जैनमत और बौद्धमत के लिए परम पुरुषार्थ केवल धर्म और मोक्ष हैं।

ई – भारतीय दार्शनिक साहित्य–

सभी आस्तिक और नास्तिक (चार्वाक को छोड़कर) दर्शनों ने विपुल दार्शनिक साहित्य विकसित किया, जिसे दो वर्गों में बांटा जा सकता है, सूत्र और व्याख्या। सूत्र शैली कहने का वह ढंग है, जिसमें सूक्त (कथन) लघु, सघन और, गर्भित सत्य–सम्बन्धी कथन होते हैं। इन सभी दर्शनों में उनके प्रतिपादकों द्वारा प्रतिपादित एक या कुछ सूत्र शैली के ग्रन्थ हैं। गर्भित प्रकृति के कारण, ये भांति–भांति के विवेचन के लिए उपस्थित हैं। अतः, दूसरी

साहित्यिक–प्रवृत्ति व्याख्या–शैली कहलाती है, जिसका तात्पर्य टीका–पद्धति से है, जो सूत्र साहित्य पर व्याख्यापरक भाष्य के रूप में है। तकनीकिरूप से ये ग्रन्थ भाष्य, टीका, तात्पर्य टीका, इत्यादि कहलाते हैं। समग्ररूप से, ये भारतीय दार्शनिक साहित्य की विपुल निधि की संरचना करते हैं।

उ – षड् दर्शनों की आवश्यकता–

षड् दर्शन वैदिक परम्परा पर आधारित छह सम्प्रदाय हैं। यह समझना महत्वपूर्ण है कि ये वैदिक मूल से कैसे और किन परिस्थितियों में उत्पन्न हुए। वेदों के बारे में माना जाता है कि वेद ज्ञान की परमावस्था को निबद्ध करते हैं। वेदराशि के चार भाग हैं, मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, और उपनिषद् जिनका तात्पर्य क्रमशः यज्ञ में स्तुतिरूप, विधि–निषेध, वन में रहकर प्राप्त प्रज्ञा, और दार्शनिक प्रज्ञा है। उनकी भाषा (प्राचीन संस्कृत) आध्यात्मिक और नैतिक बल वाले पुरुष की पहुंच में है। वेदों की सूक्ष्मता को समझने के लिए छह वेदांगों में प्रवीणता आवश्यक है। ये छह वेदांग शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, और कल्प हैं, जिनका क्रमशः तात्पर्य स्वर–विज्ञान, भाषागत नियम, लेखन–शैली–विज्ञान, धातु–प्रत्यय विज्ञान, ज्योतिर्विद्या, और वैदिक विधि–निषेध है। वैदिक ज्ञान की जटिल पूर्वधर्तों ने आमजन के लिए वेदों की पहुंच को अशक्य बना दिया। अतः, भारतीय उपमहाद्वीप के भिन्न–भिन्न भागों में समय–समय पर, अनेकों साक्षात्कृत आत्माओं ने वैदिक ज्ञान या प्रज्ञा को दर्शन–प्रणालियों के रूप में निबद्ध किया, जैसे सांख्य, योग, वेदान्त, इत्यादि। इस प्रकार षड् दर्शनों, जिन्हें वेदों का उपांग भी कहते हैं, अस्तित्व में आये।

ऊ – छह आस्तिक दर्शन

छह आस्तिक दर्शनों के आधारभूत दार्शनिक सम्प्रत्ययों, उनके प्रतिपादकों, और मूल ग्रन्थों के बारे में सामान्य जानकारी निम्नलिखित है;

1 – सांख्य–

सांख्य, सम्भवतया, आस्तिक दर्शनों में सबसे प्राचीन है। इसका प्रतिपादन कपिल ने लगभग 500 ईसा पूर्व की थी। *सांख्य सूत्र* सांख्य दर्शन का सूत्र शैली में लिखा आधारभूत ग्रन्थ है। सांख्य का लक्ष्य दो परम तत्वों, प्रकृति और पुरुष, के ज्ञान से मनुष्य को दुःखों से मुक्त करना है। प्रकृति और पुरुष क्रमशः अचेतन और चेतन तत्वों का निदर्शन करते हैं। सांख्य द्वैतवादी है और वस्तुवादी या सत् (वास्तविक) कारणता के सिद्धान्त का अनुसरण करता है, जिसे सत्कार्यवाद कहते हैं। इसका आशय है कि कार्य कारण में पूर्वतः (अस्तित्व में आने से पहले) विद्यमान है। अतः, सम्पूर्ण उद्विकास (लिंग) प्रकृति (*सत्त्व, रजस्, तमस्* रूपिणी) और पुरुष के संयोग का परिणाम है और लय एवं पुरुष के प्रकृति से भिन्न होने के ज्ञान (विवेक) की अन्तर्प्रज्ञा (अगोचर अनुभूति) मोक्ष है।

2 – योग–

योग को मनो–दर्शन और मानवीय मनोविज्ञान के उच्चतर अवस्थाओं की चर्चा में विशिष्टता सहित सांख्य दर्शन का व्यावहारिक पक्ष कहा जा सकता है। योग दर्शन का सूत्रपात पतंजलि ने अपने योगसूत्र में किया है। योग दर्शन का लक्ष्य मानवीय मन के विभिन्न रूपान्तरणों का नियंत्रण (या नियमन) एवं शान्तचित्तता है। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु योग दर्शन ने नैतिक नियमन (यम और नियम) से प्रारम्भ करते हुए समाधि की अवस्था पर समाप्त होने वाले अष्टांग मार्ग को विकसित किया।

3 – न्याय–

न्याय दर्शन का सूत्रपात गौतम के ग्रन्थ *न्याय सूत्र* से माना जाता है। यह तर्कविद्या (अन्वीक्षा) में वैशिष्ट्य रखता है। किन्तु, न्याय दर्शन का दावा है कि सोलह पदार्थों, यथा– प्रमाण, प्रमेय, संशय, तर्क इत्यादि के ज्ञान से परम आनन्द (अपवर्ग) की प्राप्ति हो जायेगी। शताब्दियों से न्याय दर्शन ने तर्कविद्या को विकसित किया है।

4 – वैशेषिक–

वैशेषिक दर्शन कणाद द्वारा प्रवर्तित किया गया। इसका आधारभूत ग्रन्थ *वैशेषिक सूत्र* है। न्याय के समान, इसका भी लक्ष्य अपवर्ग प्राप्ति है। किन्तु, इसका वैशिष्ट्य भौतिक या पदार्थ विद्या और विधेय–चर्चा में है। यह न्याय दर्शन के सोलह पदार्थों में सात पदार्थ और जोड़ देता है। वैशेषिक दर्शन अणुवाद और बहुलवादी वस्तुवाद का समर्थक है।

5 – मीमांसा–

मीमांसा जैमिनि द्वारा अपने ग्रन्थ *जैमिनि सूत्र* में प्रतिपादित किया गया है। मीमांसा अर्थविद्या है, और इस सन्दर्भ में यह वैदिक वाक्यों और विधि–निषेध के विवेचन के नियमों की चर्चा करता है। इसका मुख्य लक्ष्य मानवीय जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में वैदिक रीति–रिवाजों (कर्मकाण्ड) का अनुसरण करना है। इसका प्रतिपाद्य विषय मन्त्र और विधि–निषेध रखने वाले संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। इसलिए, यह दर्शन पूर्व मीमांसा भी कहलाता है। मीमांसा दर्शन के दो प्रमुख दार्शनिक कुमारिल और प्रभाकर थे।

6 – वेदान्त–

वेदान्त अरण्यों (जंगलों) में रहने वाले ऋषियों के आत्मज्ञान पर आधारित उपनिषदों की शिक्षाओं का प्रतिनिधित्व करता है। वेदान्त दर्शन के दो अन्य महान स्रोत भगवद *गीता* और *ब्रह्मसूत्र* हैं। *ब्रह्मसूत्र* की रचना बादरायण व्यास ने की। *उपनिषद्, गीता,* और *ब्रह्मसूत्र* मिलकर प्रस्थानत्रयी कहलाते हैं। वेदान्त आत्मा और ब्रह्म की ऐक्यता की अनुभूति की शिक्षा कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों, दृष्टान्ततः, चेतना की तीन अवस्थाएं, त्रिशरीर का सिद्धान्त, पंचकोष सिद्धान्त इत्यादि की सहायता से, देता है। प्रस्थात्रयी पर भाष्य के माध्यम से कई दार्शनिक सम्प्रदायों का उद्भव हुआ, यथा अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत आदि। वेदान्त के विभिन्न प्रमुख सम्प्रदायों का सारपूर्ण विवरण पाठ के अन्त में प्रस्तुत किया गया है।

ए – तीन नास्तिक दर्शन –

1 – जैन दर्शन–

जैन दर्शन का प्रारम्भ तीर्थंकर नाम से प्रसिद्ध मुक्त प्रबुद्धों ने किया। वर्धमान महावीर (5वीं सदी इसा पूर्व) 24वें और अन्तिम तीर्थंकर थे और ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे। *आगम सूत्र* जैन मत के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त अनेकान्तवाद (सापेक्ष दृष्टियों का सिद्धान्त), सप्तभंगीनय (सात निर्णयों का सिद्धान्त), पुदगल (भौतिक) कर्मों के द्वारा बन्धन आदि। जैन दर्शन कैवल्य का पथ *सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र,* और *सम्यक् दर्शन,* जिनका तात्पर्य क्रमशः सही ज्ञान, सही आचरण, और सही दृष्टि है, में मानता है।

2 – बौद्ध दर्शन–

बौद्ध दर्शन गौतम बुद्ध द्वारा 5वीं सदी ईसापूर्व में स्थापित किया गया था। *त्रिपिटक* और *धम्मपद* बौद्ध दर्शन के कुछ प्राचीन ग्रन्थ हैं। बौद्ध दर्शन उपायकौशल्य (स्थिति अवस्था

भेद से उपाय भेद) और मानव–केन्द्रित दर्शन है जो तत्त्वमीमांसीय अमूर्त अवधारणाओं की इस सम्बन्ध में व्यर्थता बताता है। बौद्ध दर्शन का सार इसके द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्यों में छिपा है–

1–सुःख है, 2– दुःख का कारण (दुःख समुदय) है, 3– दुःख का निवारण है, कारण की समाप्ति पर कार्य की समाप्ति हो जाती है, अतः निर्वाण की अवस्था है, 4– निवारण का मार्ग है। निवारण का मार्ग नैतिक निवृत्तिमार्ग है और समस्त इच्छाओं और वेदनाओं से निवृत्ति है। बौद्ध दर्शन के अन्य स्तम्भ अहिंसा, करुणा, और ब्रह्मचर्य का अभ्यास है। बौद्ध दर्शन में तीन प्रमुख मत वस्तुवादी सर्वास्तिवाद, परमवादी माध्यमिक, और प्रत्ययवादी विज्ञानवाद हैं।

3 – चार्वाक –

चार्वाक अहं सुखवादी लोक–दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। यह भौतिकवादी दर्शन है। इस दर्शन का प्रतिपादक बृहस्पति या चार्वाक कहे जाते हैं। प्राचीन ग्रन्थ *बृहस्पति सूत्र* और जयराशिभट्टकृत् *तत्त्वोप्लवसिंह* हैं। इसके मुख्य सिद्धान्त भौतिकवाद, प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, स्वर्ग, नर्क, पुनर्जन्म का न होना, इत्यादि हैं। चार्वाक मोक्ष की अवधारणा का खण्डन करता है और इस कारण से वैदिक आस्तिक और दोनों नास्तिक दर्शनों से मूलतः मतभेद रखता है।

4.4 दार्शनिक प्रतिउत्तर

इन दर्शनों के उद्भव और विस्तार के बारे में कोई निश्चित अन्तिम कथन नहीं है। किन्तु, सम्भवतः यह कह सकते हैं कि भारत में जो भी दर्शन या दार्शनिक सम्प्रदाय अस्तित्व में आया इन्हीं दर्शनों के माध्यम से आया। दृष्टान्ततः, विवेकानन्द और अरबिन्द घोष आस्तिक दर्शन की वेदान्त परम्परा से सम्बन्धित हैं। आधुनिक इस्कॉन वेदान्त के सम्प्रदाय अचिन्त्य भेदाभेद का परिणाम कहा जा सकता है। यह लोकप्रिय मत है कि शायद ही कोई भारतीय दर्शन या दार्शनिक आस्तिक और नास्तिक दर्शनों की विविधता से विभक्त रूप में अस्तित्व में आया हो।

यदि यह वर्गीकरण तथ्यात्मक है, तब हमें इस वर्गीकरण के लाभ और हानियों को समझना चाहिए। भारतीय दर्शन के अध्ययन में इसके कुछ विशिष्ट लाभ और हानि हैं। विविधता, निर्वचन की बहुलता, मोक्ष प्राप्ति के बहुल उपायों, लचीलापन, विभिन्न विशेषज्ञताओं, जीवनशैली का पूर्व–उपलब्ध आत्मसातीकरण इत्यादि रूपों में लाभ हैं। हानियां, विरोधी और असंगत मतों के परिणामस्वरूप उत्पन्न कड़ुवाहट और विरोध, प्राधिकारित्व, नवीनता का अभाव, अनन्यता (कठोरता) के रूप में, आती हैं। इन बाधाओं के बावजूद, भारतीय दर्शन अपने समग्र रूप में प्रत्येक बौद्धिक क्षेत्र में प्रभावोत्पादक रहा है। इस वर्गीकरण के आधार पर, कोई इच्छुक विद्वान सांख्य, योग, न्याय, मीमांसा, और वेदान्त के क्रमशः, ब्रह्माण्ड–विद्या, मनोविज्ञान, तार्किक प्रणाली, निर्वचन के नियम, और आत्मविद्या जैसे भारतीय पहलुओं को आसानी से समझ सकता है। जैन और बौद्ध दर्शन भी व्यापक और अवलोकनात्मक विश्व–दृष्टि प्रस्तुत करते हैं।

कुछ विद्वान मानते हैं कि यह वर्गीकरण मनुस्मृति के "नास्तिको वेदनिन्दकः" कथन से प्रभावित है अथवा प्रारम्भ हुआ है। किन्तु वर्तमान के लिए हमारा चिंतनीय विषय ऐतिहासिक तथ्य और निर्वचन न होकर दार्शनिक निर्वचन है। आस्तिक और नास्तिक का वर्गीकरण सर्वप्रथम 12वीं सदी के दार्शनिक माधवाचार्य के ग्रन्थ *सर्वदर्शनसंग्रह* में आता है।

कई आधुनिक विद्वान उनके वर्गीकरण में ऐच्छिकता देखते हैं। कई विद्वान इस तरह के वर्गीकरण को उपयोगी और सर्वसमावेशी न होने के आधार पर चुनौती देते हैं।

आस्तिक–नास्तिक का विभाजन सर्वस्वीकार्य नहीं है। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि यह वर्गीकरण भारतीय दर्शन के इतिहास सम्बन्धी अध्ययनों/लेखनियों का परिणाम है और उन लेखनियों ने इस वर्गीकरण को स्थापित करने के लिए गहन सर्वेक्षण नहीं किया है। उनके दावे सतही हैं। न केवल आधुनिक दार्शनिक दया कृष्ण की लेखनी में अपितु परम्परा में भी हम इस विभाजन के विरुद्ध मत पाते हैं। उदाहरणार्थ, सांख्य दर्शन अवैदिक दर्शन कहा जाता है, जबकि यह विभाजन सांख्य को वैदिक परम्परा में स्वीकारता है। सांख्य दर्शन को अवैदिक कहने का एक कारण सांख्य का तर्कों को आधाररूप में स्वीकारना है। सांख्य कहता है कि पुरुष अनेक हैं, इस मान्यता को सिद्ध करने के लिए, सांख्य तर्क प्रस्तुत करता है कि एक के जन्म से सभी का जन्म, एक की मृत्यु से सभी की मृत्यु नहीं होती है, इत्यादि। यह दर्शाता है कि पुरुष अनेक हैं न कि एक। समानरूप से हम नास्तिक कहे जाने वाले बौद्ध दर्शन का उदाहरण ले सकते हैं। बौद्ध दार्शनिक धर्मकीर्ति की परम्परा के प्रज्ञाकर गुप्त कहते हैं कि हमें (बौद्धों को) नास्तिक नहीं कहा जाना चाहिए क्योंकि हम परलोक (स्वर्गादि) में विश्वास रखते हैं। इससे यह स्वीकारा जा सकता है कि दार्शनिक परम्परा में नास्तिक शब्द वेद से ही सम्बन्धित नहीं है। आस्तिक–नास्तिक के अन्य अर्थ भी उपस्थित थे, जैसे परलोक, ईश्वर, आत्मा की सत्ता में विश्वास–अविश्वास।

दार्शनिक दया कृष्ण, इसे स्वीकारते हुए, पाते हैं कि आस्तिक कहे जाने वाले दर्शन भी वेदों की प्राधिकारिता और प्रामाण्यता के बारे में विभिन्न मत रखते हैं। जैसे कि न्याय दर्शन अपने दार्शनिक आधार के लिए साक्ष्यरूप में वेद–वाक्यों को संदर्भित नहीं करता है। वैशेषिक दर्शन शब्द को प्रमाण नहीं मानता है। मीमांसा वेदों में विधि–निषेध को स्वीकारता है और यज्ञ कैसे सम्पादित किया जाए, एक वस्तु की अनुपस्थिति में, कौन सी दूसरी वस्तु वेद स्वीकृत है आदि के लिए निर्वचन के नियमों को स्थापित करता है औ इसके साथ–साथ वेदों की अपौरुषेयता (किसी के द्वारा न लिखा जाना) को सिद्ध करता है। दूसरी तरफ, वेदान्त (विशेषरूप से शांकरवेदान्त) वेदों के अन्तिम भाग को ही अपने दर्शन के साधन रूप में स्वीकारता है और उपनिषदों के कथनों को अपने दार्शनिक विश्वासों को सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत करता है। इनके अलावा, आस्तिक दर्शनों में वेदों के निर्वचन में कोई अन्तर नहीं है, वास्तव में, उनमें से अधिकतर ने वेदों की व्याख्या का कोई प्रयास नहीं किया है। हम पाते हैं कि वेदान्त दर्शनों को अलावा शायद ही किसी दर्शन ने अपने सिद्धान्त को वेदों के निर्वचन पर आधारित किया हो।

इस प्रकार, इस वर्गीकरण की उपयोगिता को स्वीकारते हुए, हम इस वर्गीकरण की समस्याओं अथवा इस पर आपत्तियों को भी ध्यान में रखेंगे।

बोध प्रश्न 2

ध्यातव्य : क) उत्तर के लिए प्रदत्त अवकाश का उपयोग करें।

ख) इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की जांच कीजिए।

1. भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों की दो लेखन–शैलियों पर टिप्पणी करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2. उपनिषद् वेदान्त के स्रोत हैं, संक्षेप में वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 सारांश

हमने देखा कि कैसे भारतीय दर्शन–सम्प्रदाय प्रयोजनवादी और मानव–केन्द्रित है। उस प्रयोजनवादी व्याख्या पर आधारित है जिसमें मानव जीवन का लक्ष्य दुःख की समाप्ति और आनन्द की प्राप्ति माना जाता है। चार्वाक विशुद्धरूप से सुखवादी नैतिक जीवन का पक्ष लेता है, वहीं अन्य दर्शन स्थूल भौतिकवाद से पारगमन और आध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति का पक्ष लेते हैं। अपने इस लक्ष्य प्राप्ति में, आस्तिक दर्शन वैदिक मार्ग का अनुसरण करते हैं, वहीं बौद्ध और जैन दर्शन वेद से स्वतन्त्र रूप से विकसित होते हैं।

अग्रांकित सारणियां भिन्न–भिन्न दर्शनों की विषय–वस्तु, मुख्य ग्रन्थ, और मुख्य दर्शन सम्प्रदायों की संक्षेप में प्रस्तुतियां हैं।

भारतीय दर्शन

सारणी 1

आस्तिक दर्शन	नास्तिक दर्शन
सांख्य	चार्वाक
योग	जैन दर्शन
न्याय	बौद्ध दर्शन
वैशेषिक	
मीमांसा	
वेदान्त	

सारणी 2 (आस्तिक दर्शन)

दर्शन	प्रतिपादक	कुंजी ग्रन्थ
सांख्य	कपिल	*सांख्य सूत्र*
न्याय	गौतम अक्षपाद	*न्याय सूत्र*
वैशेषिक (औलूक्य दर्शन)	कणाद	*वैशेषिक सूत्र*
योग	पतंजलि	*योग सूत्र*
मीमांसा	जैमिनी	*जैमिनी सूत्र*
वेदान्त / उत्तर मीमांसा	औपनिषदिक ऋषि और बादरायण	*उपनिषद्, भगवत् गीता,* और *बादरायणकृत ब्रह्मसूत्र*

सारणी 3 (वेदान्त दर्शन के सम्प्रदाय)

सम्प्रदाय	संस्थापक	ग्रन्थ
अद्वैत	शंकर	*शारीरिक भाष्य*
विशिष्टाद्वैत	श्रामानुज	*श्रीभाष्य*
द्वैत	मध्व	*पूर्णप्रज्ञ भाष्य*
द्वैताद्वैत	निम्बार्क	*वेदान्त पारिजात सौरभ*
शुद्धाद्वैत	वल्लभ	*अणु भाष्य*
अचिन्त्य भेदाभेद	चैतन्य महाप्रभु	*गोविन्द भाष्य*

सारणी 4 (बौद्ध दर्शन के प्रमुख सम्प्रदाय)

सम्प्रदाय	दार्शनिक मत	ग्रन्थ
सर्वास्तिवाद / वैभाषिक	वस्तुवाद / वस्तुवादवत (बाह्य जगत को जानने का साधन प्रत्यक्ष है; बाह्यप्रत्यक्षवाद)	*अभिधर्म्म कोश*
सौतान्त्रिक / सूत्रवादी	वस्तुवाद (बाह्य जगत अनुमान से जाना जाता है; बाह्य अनुमेयवाद)	*कल्पनामण्डिटीका, अभिधर्म्मकोशकारिका*
माध्यमिक	शून्यवाद	*मूलमाध्यमिक कारिका, लंकावतार सूत्र, हृदय सूत्र आदि*
योगाचार विज्ञानवाद	प्रत्ययवाद	*योगाचारभूमिशास्त्र, विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि* आदि

4.6 कुंजी शब्द

पूर्णवाद : सर्वसमावेशी परम सत्य में विश्वास, यथा ब्रह्म, शून्य, शिव आदि।

आस्तिक : किसी की सत्ता में विश्वास। वर्तमान सन्दर्भ में वेदों की प्राधिकारिता को मानना।

आत्मा : चेतना की अमूर्त और अगोचर अवस्था। ईश्वर या निर्गुण ब्रह्म के समान। पूर्ण शान्ति की अवस्था।

सुखवाद : जीवन का उद्देश्य अधिकतम सुख है, मानने वाला सिद्धान्त।

प्रत्ययवाद : संसार की सत्ता का चेतना या प्रत्यय / मन में अपचयन करने वाला सिद्धान्त।

मोक्ष : मानव–जीवन का परम / अन्तिम लक्ष्य।

नास्तिक : किसी की सत्ता न मानने वाला। वर्तमान सन्दर्भ में, वेदों की प्राधिकारिता को न मानना।

शून्यवाद : समस्त वैचारिक कोटियों और भाषायी सम्प्रत्ययों का निषेध।

पंचकोश : मानव अस्तित्व/व्यक्तित्व के पांच भाग, जैसाकि तैत्तिरीय एवं अन्य उपनिषदों में वर्णित है। ये हैं, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय कोष।

मुख्य उपनिषद् : वेदान्त दर्शन के मुख्य उपनिषद्। शंकराचार्य ने इन मुख्य उपनिषदों पर भाष्य लिखा। सामान्य तौर पर ये दस हैं, *ईश (यजुर्वेद* से सम्बन्धित), *केन* (*सामवेद* से सम्बन्धित), *कठ (यजुर्वेद), प्रश्न (अथर्ववेद), मुण्डक (अथर्ववेद), माण्डूक्य (अथर्ववेद), तैत्तिरीय (यजुर्वेद), ऐतेरेय (ऋग्वेद), छान्दोग्य* (*सामवेद*), और *बृहदारण्यक* (यजुर्वेद)।

पुरुषार्थ : मनुष्य के गुण और कर्त्तव्य। ये चार हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

वस्तुवाद : बाह्य जगत की मन से भिन्न सत्ता मानने वाला सिद्धान्त।

शरीर त्रय : उपनिषदों में वर्णित तीन शरीर, स्थूल, सूक्ष्म, और कारण शरीर।

प्रयोजनशास्त्र : वस्तु की व्याख्या उद्देश्य के आधार पर करना।

अगोचरवाद : तत्त्वमीमांसीय क्षेत्र के अस्तित्व और उसके अनुभव में विश्वास करने वाला सिद्धान्त।

वेदान्त : प्रस्थानत्रय; *उपनिषद्, भगवदगीता, ब्रह्मसूत्र* पर आधारित दर्शन।

4.7 अन्य सहायक अध्ययन–सामग्री एवं सन्दर्भ

गनेरी, जे. *द ऑक्सफोर्ड हेण्डबुक ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी.* देल्ही: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2017.

डायसन, पॉल. *द फिलॉसोफी ऑफ उपनिषद्स.* न्यूयॉर्क: कोसिमो क्लासिक्स, 2010.

दया कृष्ण. *इण्डियन फिलॉसोफी: अ काउन्टर पर्स्पेक्टिव.* न्यू देल्ही: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1991.

दासगुप्त, एस. एन. *अ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी.* देल्ही: मोतीलाल बनारसीदास, 1991.

भट्टाचार्य, सिब्जीबन. "दि इण्डियन फिलॉसोफिकल सिस्टम्स: देयर बेसिक युनिटी एण्ड रिलिवेन्स टुडे." इन *इण्डियन फिलॉसोफिकल सिस्टम्स.* 1–14. कोलकाता: द रामकृष्ण इन्स्टिट्यूट ऑफ कल्चर, 2010.

शर्मा, सी. डी. *अ क्रिटिकल सर्वे ऑफ इण्डियन फिलॉसोफी.* देल्ही: मोतीलाल बनारसीदास, 1990.

राधाकृष्णन्, एस. *इण्डियन फिलॉसोफी,* द्वितीय संस्करण. लंदन: जॉर्ज अलेन एण्ड अन्विन, 1931.

राधाकृष्णन्, एस. *प्रिंसिपल उपनिषद्स.* न्यूयॉर्क: हार्पर कॉलिन्स, 1963.

हिन्दी अध्ययन सामग्री

चट्टोपाध्याय, देवीप्रसाद. *भारतीय दर्शन में क्या जीवंत है और क्या मृत.* अनुवाद– कन्हैया. नई दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, 2007.

दयाकृष्ण. *भारतीय दर्शन: एक नई दृष्टि.* जयपुर: रावत पब्लिकेशनस, 2000.

दासगुप्त, सुरेन्द्र नाथ. *भारतीय दर्शन का इतिहास* (पांच भाग). अनुवाद– कलानाथ शास्त्री एवं सुधीर कुमार. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1977.

राधाकृष्णन, एस. *भारतीय दर्शन* (दो खण्ड). अनुवाद– नन्दकिशोर गोभिल. दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स, 2015.

शर्मा, चन्द्रधर. *भारतीय दर्शन का आलोचनात्मक सर्वेक्षण.* दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2005.

हिरियण्णा, एम. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा.* हिन्दी अनुवाद– गोवर्धन भट्ट आदि दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1969.

4.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. लोकरूढ़ अर्थ में, आस्तिक एवं नास्तिक पद क्रमशः ईश्वर–विश्वासी एवं ईश्वर–अविश्वासी का निदर्शन करते हैं। किन्तु, इसके विपरीत, भारतीय दर्शन के सन्दर्भ में आस्तिक एवं नास्तिक पद समग्रतः भिन्न भाव रखते हैं। शब्दार्थ चिन्तन की दृष्टि से, ये पद किसी के होने (अस्ति) अथवा न होने (न–अस्ति) को निदर्शित करते हैं। यहां, विधेय सत्ता के कर्त्तारूप में वेदों या वैदिक ज्ञान की पवित्रता/अखण्डता है। अतः, आस्तिक का तात्पर्य हुआ वेद की प्राधिकारिता (या प्रामाण्य) को मानना जबकि नास्तिक का तात्पर्य हुआ वेद की प्राधिकारिता को नकारना या उसके प्रति उदासीनता। यह वर्गीकरण मनुष्य जीवन की प्रयोजनवादी व्याख्या पर आधारित है। परम्परागत् रूप से, छह आस्तिक दर्शन हैं; न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त और तीन नास्तिक दर्शन हैं; जैन, बौद्ध, और चार्वाक ।

2. वैदिक ज्ञान प्रणाली से दूरी रखने वाले नास्तिक दर्शन कहलाते हैं। इनमें भी सूक्ष्म, अपितु महत्वपूर्ण अन्तर है। एक वर्ग में जैन और बौद्ध दर्शन को रखा जा सकता है। उनका भी यह तो मानना है कि परमसत्य या निर्वाण (या कैवल्य या मोक्ष) प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए वेदों का अनुसरण अपरिहार्य शर्त नहीं है। इसका सम्भावित कारण या तो वेदों का निष्फल और दूषित पद/चरण/अवस्था हो सकता है या फिर वेदों के प्रति झुकाव के बिना मानव की समस्याओं के दार्शनिकीकरण एवं समाधान के लिए नये प्रारम्भ का उत्साह। अतः, हम पाते हैं कि प्रारम्भ में जैन और बौद्ध दर्शन वेदों के प्रति अधिक या कम उदासीन थे और अपनी चिन्ताओं को सत्य और आनन्द की खोज तक सीमित किए हुए थे। तदनुसार, बौद्ध और जैन के आदर्श क्रमशः निर्वाण और कैवल्य के रूप में विकसित हुये।

नास्तिक दर्शन का अन्य वर्ग चार्वाक के अपवादित मामले को रखता है। उन्होंने पूरी तरह से वेदों की प्राधिकारिता को नकार दिया। वे जैन और बौद्धों के भी आलोचक थे। चार्वाक दर्शन का झुकाव किसी भी तत्त्वमीमांसीय प्राक्कल्पनाओं की ओर नहीं था। उनके अनुसार, कोई मोक्ष, निर्वाण या कैवल्य नहीं होता है। पुनर्जन्म और कर्म–सिद्धान्त की असम्भावना है, अतः जीवन का एकमात्र लक्ष्य सुख की अधिकतम प्राप्ति है। उनके अनुसार, काम (सुख) परमपुरुषार्थ (मानव द्वारा प्राप्तव्य उच्चतम) है। सत्तामीमांसा की दृष्टि से, चार्वाक भौतिकवादी दर्शन है, जो ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग, रीति–रिवाजों के अस्तित्व, इत्यादि को नकारता है। इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि नास्तिक दर्शन के अन्तर्गत् आने वाला चार्वाक दर्शन जैन और बौद्ध दर्शनों से किस प्रकार भिन्न है।

बोध प्रश्न 2

1. सभी आस्तिक और नास्तिक (चार्वाक को छोड़कर) दर्शनों ने विपुल दार्शनिक साहित्य विकसित किया, जिसे दो वर्गों में बांटा जा सकता है, सूत्र और व्याख्या। सूत्र शैली कहने का वह ढंग है, जिसमें सूक्त (कथन) लघु, सघन और, गर्भित सत्य–सम्बन्धी कथन होते हैं। इन सभी दर्शनों में उनके प्रतिपादकों द्वारा प्रतिपादित एक या कुछ सूत्र शैली के ग्रन्थ हैं। गर्भित प्रकृति के कारण, ये भांति–भांति के विवेचन के लिए उपस्थित हैं। अतः, दूसरी साहित्यिक–प्रवृत्ति व्याख्या–शैली कहलाती है, जिसका तात्पर्य टीका–पद्धति से है, जो सूत्र साहित्य पर व्याख्यापरक भाष्य के रूप में है। तकनीकिरूप से ये ग्रन्थ भाष्य, टीका, तात्पर्य टीका, इत्यादि कहलाते हैं। समग्ररूप से, ये भारतीय दार्शनिक साहित्य की विपुल निधि की संरचना करते हैं। ये सभी विविधता, विशिष्टता, और भारतीय बौद्धिक परम्परा के सभी दार्शनिक सम्प्रत्ययों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं।

2. उपनिषद् पद उप, नि और सद् शब्दों से व्युत्पन्न है। इसका अर्थ हुआ गुरु के समीप बैठकर अध्ययन करना। यह गुरु के प्रति सम्मान प्रदर्शित करता है। इस समीप बैठने से आत्म और ब्रह्म के बारे में महावाक्यों के ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान का अंधकार नष्ट हो जाता है। उदाहरणस्वरूप ईशावास्य उपनिषद्। उपनिषदों (*गीता* और *ब्रह्मसूत्र* सहित) पर आधारित शिक्षाएं वेदान्त भी कहलाती हैं। यह सर्वोत्तम रूप से महावाक्यों में निबद्ध है, जो आत्म, जगत और ब्रह्म की एकता को निदर्शित करते हैं।